

---

## दूसरा अध्याय

---

\* \* \* \* \*

---

आधुनिक काल में मूल्य संक्रमण

---

\* \* \*

## 2 - आधुनिक काल में मूल्य-संक्रमण

### I - आधुनिक काल का सीमांकन

यूं तो साहित्येत्तिवास लेखन की परम्परा आवार्य शुल्क से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुकी थी तथापितृं शुल्कजी ने "हिन्दी साहित्य का इतिवास" (1929) लिखकर हिन्दी साहित्य लेखन की परम्परा में एक मील के पश्चात की स्थापना कर दी थी। इसके उपरान्त एक के बाद एक के अनेक साहित्येत्तिवासज्ञ अवतरित हुए और इस परम्परा की अपने योगदान से समृद्धि किया। ये सभी इतिवासज्ञ काल विभाजन के विषय पर 'मुन्डे-मुन्डे मतिभिला' की कहावत ही चरितार्थ करते रहे। अर्थात् सभी ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार काल विभाजन संबंधी तथ्य प्रस्तुत किए। इनकी सक्षिप्त विवेचना यहाँ प्रस्तुत है।

आवार्य रामचन्द्र शुल्क ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ स. 1900 (ई.स. 1843) से माना है जो अब तक चला आ रहा है। <sup>1</sup> डॉ. रामसुदरदास

ने अपने काल विभाजन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल विभाजन को लगभग समर्थन दिया दिया है। डॉ. रामकुमार वर्मा भी इसी मत से सहमत है।<sup>2</sup>

वर्ष 1857 हिन्दी साहित्य के इतिहास में ही नहीं अपितु भारत के इतिहास में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे आधार बिंदु मत का हिन्दी साहित्य के इतिहास को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक तो सन् 1887 से पूर्व का साहित्येतिहास तथा दूसरा 1887 का उत्तरवर्ती हिन्दी साहित्य का इतिहास। दूसरी और आधुनिक काल के प्रवर्तक कहे जानेवाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् 1850 में हुआ था। कुछ साहित्यज्ञ हिन्दी साहित्य के इतिहास में 1850 को एक महत्वपूर्ण बिन्दु स्वीकारते हैं। इनकी इस धारणा का प्रमुख आधार इस काल के प्रमुख लेखक के स्थ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की स्थापना ही है। 'हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रारम्भिक समय को आधुनिक काल कहा जाता है क्योंकि आतीचकों तथा इतिहासकारों के अनुसार इस समय की साहित्यिक गतिविधि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की परिष्कृत साहित्यिक सुरुचि एवं जागरूकता के फल स्वरूप केन्द्रित होकर नवीन वातावरण नियोजित करने में प्रतिकालित हुई थी।<sup>3</sup> आधुनिक काल के प्रारम्भ की एक निश्चित तिथि तो तय नहीं की जा सकी है, और यह संभव भी नहीं है क्योंकि कोई भी काल एक दिन दिरीष से प्रारंभ नहीं होता, तथापि अनेक किंदान् इस सम्यता का एक मत होकर समर्थन करते हैं कि आधुनिक काल का जन्म उनीसवीं सदी में हो गया था और वह उत्तरीलोक बीसवीं सदी में अपने क्षितार को प्राप्त हुआ।

आधुनिक काल का विभाजन-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्गाकाल' की संज्ञा से अभिहित किया तथा इसका विभाजन इस प्रकार किया है—

1- प्रथम उत्थान — सं. 1925 से सं. 1950

2- बिंदीय उत्थान — सं. 1950 से सं. 1975

3- तृतीय उत्थान — सं. 1975 से.....<sup>4</sup>

डॉ. गणपतिराई गुप्त ने आधुनिक काल का विभाजन कह्य

नुसार इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

- 1- भारतेन्दु युग 1857 से 1900 ई.  
द्विवेदी
- 2- निकोम्य ऋषि युग 1900 से 1920 ई.
- 3- छायावाद युग 1920 से 1936 ई.
- 4- प्रगतिवादयुग 1937 से 1945 ई.
- 5- प्रयोगवाद युग 1945 से 1965 ई. <sup>5</sup>

अब तक की नवीनतम छोजबीन के आधार पर डॉ. नगेंद्र बारा सम्पादित स्थिरी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का विभाजन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

आधुनिक काल उन्नीसवीं सदी के मध्य से अब तक

- 1- पुनर्जागरण काल ( भारतेन्दु काल) 1889 ई. से 1900 ई.
- 2- जागरण-सुखारकाल (द्विवेदीकाल ) 1900 ई. से 1918 ई.
- 3- छायावादकाल 1918 ई. से 1930 ई.
- 4- छायावादोत्तर काल
  - क - प्रगति-प्रयोग काल 1938 से 1953 ई. <sup>6</sup>
  - ख - नवलेखन काल 1953 से अब तक

हमारे विचार से डॉ. नगेंद्र कृत आधुनिक काल विभाजन ही अधिक उचित प्रतीत होता है जिसमें अद्यतन लेखन की परम्परा स्वयमेव समाहित हो जाती है।

## 2- आधुनिक काल की सेतिवासिक पृष्ठभूमि

सन् 1857 में हुई भारतीय क्रांति का बीज वपन वाहतव में उसके सक-सौवर्षपूर्व ही हो गया था जब अग्रेजों ने बंगाल के नबाब सिराजुद्दौला के झिलाफ अपनी पहली लढ़ाई उसके विश्वासघाती सरदार मीर जाफर की मदद से 23 जून 1757 ई. की

पलासी के मैदान में जीतकर अपनी भावी विजयाकारा का उद्घोष किया था। यही वह प्रस्थान बिंदु है जहाँ से भारत की दृर्शा की हृदय विदारक करण गथा क्ल शुरू होती है जो कि यातना और यंत्राओं और संघर्षों के विभिन्न दौरों से होती हुई 15 अगस्त 1947 को समाप्त हुई। भारतीय इतिहास के इस अधि युग में भारतीयजन जीवन ने अनेक उतार चढ़ाव देले? इन्हीं उतार चढ़ावों के दीरान ऐविकीय परिस्थितियों करवटे बदलती रहीं। परिणाम स्वरूप व्यक्ति के जीवन मूल्य भी युगानुरूप नए स्वरूप ग्रहण करते गए। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व की विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक सर्व सामाजिक परिस्थितियों की आवृन्ति काल के परिप्रेक्ष्य में विवेचना प्रत्युत करना चाहेगा जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इन परिस्थितियों ने किस प्रकार राजनीतिक मूल्य निधारण सर्व परिवर्तन में क्या और कितनी भूमिका निभाई? इस संक्षिप्त चर्चा के झरों से हम वर्तमानकाल में चल रहे मूल्यसंक्रमण के अतीत को त्रिलोकनिहारने का प्रयास करें।

अ) राजनीतिक परिस्थितियाँ — सन् 1850 में भारतेन्दु हाइकंड का जन्म हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टिगत खड़ते हुए इस काल की सर्थी काल कहा जा सकता है, क्योंकि अब तक भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का ही राज था। अंग्रेज भारत के विभिन्न नवाबों, साम्राज्यों को आपस में लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करते रहे तथा साथ ही साथ निदीह जनता पर नाना प्रकार से अत्याचार भी करते रहे। अब इस की प्रतिक्रिया विभिन्न माध्यमों से दृष्टिगोचर होनी लगी थी। अंग्रेजों की किसारवादी, पक्षपातपूर्ण सर्व दमनकारी नीति के परिणामों का खिलाफ सन् 1857 ई.में क्रान्ति के रूप में सामने आया। "परिणामतः ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त कर दी गई और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया।"<sup>7</sup> इससे भारतीयों में स्वाधीनता की बहु प्रतीक्षित आकङ्क्षा बलवती हुई और धीरे-धीरे उसने उग्र रूप धारण किया। अब तक यन्त्र-तन्त्र बिलारे हुए अनेक राजनीतिक तत्व सक्रिय हुए। जिनकी गतिविधियों से स्लिल

चिन्तित होकर एक अंग्रेज ए.ओ.ह्यूम ने सन् 1885 में कांगड़ी की स्थापना की जिसका प्रमुख उद्देश्य जनता की समस्याओं और आंदोलन को अंग्रेज सरकार तक संप्रेषित करना था। लेकिन यही कांगड़ी कालान्तर में अंग्रेज सरकार के लिए सौत का सदैश लेकर आयी। सन् 1905 में लार्ड कर्जन ब्लारा बंगाल विभाजन की सरकारी घोषणा ने एक व्यापक जन आंदोलन को उकसाया, इससे अंग्रेजों की आकृष्णार्थ सदैश के प्रबल धेरों में आ गई। अंग्रेजी राज्य को हटाने के लिए विभिन्न संस्थाओं का गठन हुआ। इसी समय स्वदेशी आंदोलन चला जिसने सारे देश को अपनी चक्रत में ले लिया। साहित्यकार लुलकर स्वाधीनता आंदोलन के समर्थन में आगे आए और आद्वान किया

जिसको न निज गौरव तथा

निज देश का अभिमान है

वह नर नहीं, नर पशु है,

और मृतक समान है।

तथा और भी कहा कि

मेरा नहीं जो भावों से बहती जिसमें सधार नहीं<sup>र</sup>

हृदयन् नहीं वह पत्था है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥

इसके साथ ही अनेक अन्य आंदोलन चले जिनसे भारतीय जन-मानस में राष्ट्रीयता, देश भक्ति के मूल गौतम शुद्ध विचार न होकर समाज की आर्थिक व्यवस्था होती है।<sup>8</sup> अंग्रेज के आगमन से पूर्वीक भारत अतिसुखी और समृद्ध देश था। यवन, हृषि और मुगलों के अनेक आक्रमणों को छोलने के बाद भारत में पर्याप्त सफन्तता बनी रही। लेकिन अंग्रेजों के आने के बाद देश की आर्थिक स्थिति अघोरुद्धी होती गई। अंग्रेज भारत में ऐसा लूटने के लिए ही आया था। 'अंग्रेजों' का मुझ सुलसने वाली गर्मी में समुद्रों

आ ) आर्थिक परिस्थितियों — 'मनुष्य की विचारधारा का मूल स्रोत शुद्ध विचार न होकर समाज की आर्थिक व्यवस्था होती है।'<sup>8</sup> अंग्रेज के आगमन से पूर्वीक भारत अतिसुखी और समृद्ध देश था। यवन, हृषि और मुगलों के अनेक आक्रमणों को छोलने के बाद भारत में पर्याप्त सफन्तता बनी रही। लेकिन अंग्रेजों के आने के बाद देश की आर्थिक स्थिति अघोरुद्धी होती गई। अंग्रेज भारत में ऐसा लूटने के लिए ही आया था। 'अंग्रेजों' का मुझ सुलसने वाली गर्मी में समुद्रों

यार पहाड़ी धरती पर, भारत के दूरदराज से से लोगों के बीच जाने का उद्देश्य जिनकी संखृति, भाषा, धर्म, जाति और जलवायु उनसे फिल्हा थे केवल पेसा बनाना था और कुछ भी नहीं।<sup>9</sup> इसी उद्देश्य की संकल सफलता के लिए सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर अंग्रेजी कर्मचारियों की पकड़ मजबूत होती गई। यूं तो अंग्रेजों से पूर्व की आक्रमण कारी भारत आए। उन्होंने यहाँ की संपदा और समृद्धि को तो जीता लेकिन सभ्यता और सामाजिक विकास के क्षेत्र में भारत से पिछड़े होने के कारण यहाँ की सामाजिक व्यवस्था को छेदने का दुस्सासहस न कर सके और यहाँ<sup>ले</sup> सुविकसित सभ्यता से पराजित होते गए। इस प्रकार यहाँ का सामाजिक ढाँचा पूर्ववत् बरकरार रहा। आर्थिक इकाई बनी रही।<sup>10</sup> लेकिन अंग्रेज सभ्यता के क्षेत्र में यहाँ के लोगों से जागे थे। पूजीवादी व्यवस्था को ग्रहण कर चुके थे सो यहाँ की अर्थव्यवस्था को अपने अनुकूल ढालने में सफल हुए। अंग्रेज राज से पूर्व भारतीय अर्थ व्यवस्था गवाँ में फलो-फूली थी। कृषि सर्व लघु उद्ग्रोग यहाँ की आँख के प्रमुख स्रोत थे। "गाँव अपने आप में पूर्ण आर्थिक इकाई थे।" अंग्रेजों के आने से अबतक चल रही सुव्यवस्थित अर्थव्यवस्था क्लिनिक्स नहीं हो गई। अंग्रेजों ने पूजी वादी व्यवस्था को बदावा देते हुए नव औद्योगीकरण की नीति को फैलाया। गवाँ की भूमि पर अब तक चले आ रहे सम्मेलन अधिकार के बदले जमीदारी प्रथा की पनपाया। गवाँ की फसलें बाजार की मटियों की ओर चलने लगीं। इस प्रकार अब तक का संपन्न कृषक विपन्न बनकर झूग लेने के लिए बाध्य हुआ और शैनः शैनः जमीदारों, महाजनों के चगुल सभी नागपाश में आबध दोता चला गया। विदेशी पूजी से भारत में स्थापित न्यू उद्ग्रोग धन्धों विदारा औद्योगीकरण की नीति से आवृष्ट होकर ग्रामीण शहरों की ओर पलायन कर गए। इस तरह ग्रामीण अर्थव्यवस्था चौपट होने के साथ-साथ ग्रामीण उद्ग्रोग धन्धों की भी बधिया बैठ गई।

इस के साथ ही साथ यहाँ से कच्चे माल को इंसेंड भेजा जाता था, तथा उससे तैयार वस्तुएँ कई गुने दामोंपर यहाँ बेची जाती थी। चूंकि यहाँ केवल सभी उद्ग्रोग

उद्योग अर्थे अग्रेजों ने पहले ही चौपट कर दिए थे। अतः जनता इस विलम्बती उत्पादन से अपनी आकर्षकता पूर्ति के लिए विकास थी। इस प्रकार एक और जहाँ स्थानीय जनता की आय के सभी स्रोत<sup>समाप्त</sup> प्रायः ही चुके थे तो दूसरी और अपनी दैनिक आकर्षकताओं की पूर्ति के लिए निरंतर उनकी आर्थिक आकर्षकतासे बदली जाती थीं। अग्रेजों ने इस तरह एक और भारतीय जनता को छू चूसा तो दूसरी और यहाँ के कब्जे माल को ब्रिटेन खेजकर यहाँ की प्राकृतिक संपदा का भरपूर दौड़न किया। एक और नई अग्रेजी सरकार ने कृष्णों पर मालगुजारी के स्थ में तरह-तरह के ब्रा कर लाद दिए तो दूसरी और वृषक, महाजनों और जमीदारों से लिए गए छोड़ों के सूक्ष्म तरह दबते चले गए। इसके साथ ही साथ समय-समय पर आनेवाली महामारी और बकाल जैसी भीषण समस्याओं ने भी भारतीय जनता पर कहर की वर्षा की। विषयति की इन घटियों में अग्रेज भारतीय जनता की दयनीय अवस्था को हाथ पर हाथ धरे देखता रहा।

यद्यपि अब तक अग्रेजों ने विभिन्न शैत्रों में न्यू विकसित उद्योगों की स्थापना की थी जिससे कुछ लोगों को रोजगार आदि मिला और कुछ समृद्धि का संचार भी हुआ लेकिन दूर्भाग्य यह कि सारा लाभशी विदेशों में चला जाता था। इसकी चर्चा भारत-दुकालीन साहित्य में प्रचुरतासे देखी जा सकती है। डॉ. बचनसिंह के अनुसार 'साहित्य का इतिहास बदलती हुई अधिक चियों और सर्वेदनाथों का इतिहास होता है, जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से है।'" व्यक्ति का जीवन आर्थिक स्थिति से प्रभावित हुए बिना नहीं<sup>रह</sup> सकता। इस दयनीय, चिन्तनीय अवस्था में तत्कालीन समाज को अवश्यमैव प्रभावित किया होगा। जिसके अनुसार जीवन-मूल्य भी प्रभावित हुए होंगे। इस आर्थिक शोषण के विरुद्ध जनता में असन्तोष व्याप्त हुआ जौर उनमें राष्ट्रप्रेम स्वदेश प्रेम का नारा बुलंद हुआ जिसने भारतीय जन-जीवन में एक महत्व पूर्ण जीवन-मूल्य का स्वस्थ ग्रहण किया जो कि तत्कालीन साहित्य में चित्रित हुआ है।

इसी आर्थिक शोषण के फलस्वरूप तत्कालीन भारतीय समाज की स्थिति भी बहुत बिगड़ चुकी थी। कई प्रकार की विसंगतियाँ और बुराइयाँ का जन्मथल और पौधक बन गया था तत्कालीन समाज।

इ) सामाजिक परिस्थितियाँ — एक कहावत है कि यथा राजा तथा प्रजा अर्थात् जैसा राजा वैसी प्रजा। जब भारत में अग्रीजी औपनिवेशक शासन स्थापित हुआ तब भारतीय समाज में बुराइयाँ भरी पढ़ी थीं। सम्पूर्ण समाज विश्वालित था। सभी जाति, धर्म, संप्रदाय आपसी व्यवहार स्वर्द्धा की ज्वाला में धधक रहे थे। अधि विश्वासों और रुदियों से ग्रसित देश सुखाकथा में पढ़ा हुआ था। यह सब दयनीय राजनीतिक स्वर्ण शोषणयुक्त आर्थिक नीतियों का ही दृष्टिरिणाम था। क्योंकि राजनीति स्वर्ण अर्थ दोनों ही समाज को दिशा निर्देश देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आर्थिक संकट स्वर्ण बाह्याहम्बरों से समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ फैल गई थीं। व्यक्ति चेतना सुप्त थी। समाज में व्यक्ति स्वार्तव्रय के अस्तित्व की पहचान संभव थी। अस समाज में स्त्री वर्षी की दशा अतिदयनीय थी। पद्धतिधा के फलस्वस्य यार की चार दीवारी में रहकर ही वे कूपमहूक रहती थीं। नारी स्वार्तव्रय जैसा कोई मूल्य समाज में प्रचलित नहीं था। परिवार में क्या का जन्म दृश्यि का प्रतीक समझा जाता था - और उन्हें जन्मते ही मार दिया जाता था। लड़कियों में शिक्षा का अभाव तथा लड़कों में शिक्षा सीमित थी। बाल-विवाह, वृद्ध विवाह, बहुपत्नी प्रथा तथा विधवा विवाह निषेध आदि उस समय के कुछ उदाहरण हैं जो तत्कालीन समाज के चैहरे को विकृत स्वर्ण धिनोना बनाए हुए थे। सम्पूर्ण समाज जब स्वर्ण निम्न तथा शोषक स्वर्ण शोषितों में विभक्त था। इसके परिणाम स्वस्य शोषकों में योग विलास तथा शोषितों में नैतिक पतन अपने चारमोत्तर्ष पर था। ऐसे में अनेक प्रकार की राजनीतिक सामाजिक संस्थाएँ तथा महान धार्मिक स्वर्ण राजनीतिक पुरुष उपरकर समन्वय आस जिन्होंने समाज को इन कुरीतियों के माध्यम से पतनान्मुळी होने से बचाने के प्रयास किए।

इनमें से प्रमुख थे राजा राम मोहन राय, डॉ. पाहुरग, स्वामी दयानन्द सरस्वती, कैशवचन्द्र, जगदीश चन्द्रबोस, रवीननाथ ठाकुर आदि।

इनमें से कुछैक के ब्दारा किए गए सुधार कार्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। इन सुधार कार्यों ने प्रचलित जीवन मूलयों के संक्रमण सर्व स्वस्य परिवर्तन में किस प्रकार भूमिका निभाई यह भी स्पष्ट हो जाता है।

### ३) आधुनिक काल के विभिन्न अन्दौलन :

ब्रह्म समाज ( 1828ई.) — अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ के समय में राजा राममोहन राय ( 1772-1833 ) जैसे समाज सुधारकों ने तत्कालीन हिन्दू समाज की सती-प्रथा मृत्तिंष्टूजा, धार्मिक अन्धनविश्वासों जैसी बुराइयों का तीव्र विरोध करते हुए आधुनिक भारत की नीव का पहला पत्थर रखा। इसी संदर्भ में उन्होंने सन 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की जिससे धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में नवीनीतना का प्रादूर्भाव हुआ। ब्राह्मण होते हुए भी राजा राममोहन राय ने अर्बी, फारसी का ज्ञान प्राप्त कर प्राचीन यूनानी विचारकों का परिचय प्राप्त किया। इसके साथ ही आपने हिन्दू-बौद्ध, ईसाई तथा इस्लाम धर्मों का गहन अध्ययन और चिन्तन किया था। इस सबके परिणाम स्वस्य तथा कथित धर्म के ठेकेदारों द्वारा उन्हें अनेक प्रकार से लक्षित कर नीचा दिखाने के प्रयास भी किए गए। उनके ब्दारा किए गए कार्यों में सतीप्रथा विरोध तथा विधवा पुनर्विवाह चिरस्मरणीय रद्दैगे। इन कार्योंके लिए उन्हें परम्पराग्रेमियों सर्व असामाजिक तत्वों से लोहा लेना पड़ा। लेकिन राम मोहन राय ने सृतियों सर्व शाश्वतों के आधार पर इसका निपत्ता विरोध किया तथा अपने कथन के समर्थन में एक बै बाद एक कर तीन पुस्तकें प्रकाशित की जिनका सारांश यही था कि सती होना आत्महत्या के समान है। उन्होंने स्त्री सर्व पुरुष दोनों के लिए समान अधिकारों की वकालत की। आपने युगानुकूल

पास्चात्य संस्कृति, अङ्ग्रेजी शिक्षा तथा ब्रिटिश राज्य की अन्धाशयों को भी महत्व प्रदान किया। 'कस्तुतः उन्नीसवीं शती के पूर्वाई तक अङ्ग्रेजों ने जो कुछ किया उसे ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगति शील ही कहा जाएगा।'<sup>12</sup> हिन्दूत्व के नव-संस्कार और सबै ईश्वर की आराधना की प्रतिष्ठा को आधार बनाकर ब्रह्म समाज की स्थापना करने वाले राजा राम मौहन राय सन् 1833 में ब्रिस्टल (विलायत) में स्वर्गवासी हुए। आप की मृत्यु के बाद ब्रह्म समाज ने महर्षि देकेइनाथ टेगोर (1817-1905) के नेतृत्व में तर्क सर्व बुद्धि को प्रश्रय देना प्रारम्भ किया। इनके बाद हुस केशवचन्द्र सेन (1838-89) अपने आपको तार्किकता सर्व बोधिकता तक ही सीमित न रखकर भजन कीर्तन की ओर जाकृष्ट हुए, ईसाई धर्म की ओर अधिकाधिक झुकते गए परिणाम स्वरूप ब्रह्म समाज दो बार विभक्त हुआ। नई संस्थाएँ बनीं साधारण ब्रह्म समाज और नव-वैदेशि। ब्रह्मसमाज के प्रमुख सदस्यों के स्थ में जगदीशचन्द्र बोस, प्रफुल्लचन्द्र राय, और रवीन्द्र नाथ टेगोर के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इन सभी ने सामाजिक बुराइयों को दूर कर समाज में नई चेतना का संचार करने के प्रयास किए। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मसमाज ने प्राचीनकाल से चले आ रहे जड़ मूल्यों यथा सती-प्रथा, जाति-घाति व्यवस्था, धार्मिक कट्टरता सर्व सामाजिक सटीकाद के विरोध में अपनी आवाज ब उठाई कर लोक-कल्याण और राष्ट्रप्रेम संबंधी जीवन-मूल्यों को जीवन्त रखने हेतु नया प्राण प्रदान किया।

अ) प्रथना समाज — केशव चन्द्र सेन के प्रभाव से सन् 1867 में प्रथना समाज की स्थापना हुई जिसका प्रमुख नेता महादेव गोविन्द रान्हे को माना जाता है। रान्हे बहुमुखी प्रतिभा के धनी, उन्नीसवीं सदी के प्रमुख बुद्धिजीवी, विधिवेत्ता और मैधावी व्यक्ति थे। दैश और समाज संबंधी सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर आपने तर्कपूर्ण चिन्तन किया तथा सामाजिक संदियों और अधिक्रियास्त्रों के विरुद्ध सतत संघर्ष रत्तरहै। इसके साथ ही समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य समता लाने के प्रयत्न करते रहे। उनके मन में मध्ययुगीन महाराष्ट्रीय सन्तों यथा- नामदेव

जनैक्षवर, तुकाराम, रामदास आदि के प्रति अगाध श्रद्धा सर्वं सम्मान था। वे केवारिक प्रतिक्रियावाद, मानसिक संकीर्णता सर्वं पूर्णिर्ह के मौहपश्च से सर्वथा मुक्त रहे। ब्रह्म समाज के नेता, किरोष्कर केशवकन्द्र सेन ने जातिप्रथा तथा अन्य सामाजिक बुराइयों को तिलाजिलि देने में कोई हिचक नहीं दर्शाई, उनका विरोध वैदिक धर्म के आधार पर नहीं बल्कि पाश्चात्य आदर्शों में अन्तर्निहित सामाजिक समानता के तर्कों के आधार पर किया। जब कि प्रार्थना समाज हिन्दू धर्म की कुप्रथाओं में सुधार तो चाहता था लेकिन अपने अतीत अपनी परम्पराओं को ठुकरा कर नहीं। रानडे ने मानव सभ्यता की पुरजीत वकालत की। जातिप्रथा का विरोध कर अन्त-जातीय विवाह का पक्ष लिया। स्त्री शिक्षा पर भी जोर दिया। प्रार्थना समाज ने कुछ अनाधालय, विधवालय, कन्या-पाठशालाओं की स्थापना के साथ ही एक दलितोधारा मिशन भी खोला। परिणाम स्वरूप हिन्दू सामाजिक जीवन में सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध एक विरोध भाव प्रस्फुटित हुआ जिससे भविष्य में समाज सुधार के कार्य में बही सहायता मिली।

इस विवेचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीवन के सामाजिक मूल्यों में विकास की दृष्टि से प्रार्थना समाज की भूमिका और महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। मानव मात्र में असमानता की भावना किसी भी सभ्य समाज के लिए घातक है। मानव में समता की भावना जागृत कर प्रार्थना समाज ने निश्चय ही परम्परागत मूल्यों की प्रतिष्ठा में नियम-स्वीकृति अमूल्य योगदान अपूर्ति किया।

श्री आर्य समाज — आर्य समाज की स्थापना सन् 1875 ई में श्रीमहर्षि दयानन्द सरस्वती (सन् 1824-1883) के द्वारा हुई थी। स्वामी दयानन्द व्यावहारिक व्यक्ति थे। अतः उन्होंने सफलता पूर्वक अपनी मूल प्रेरणा को विशद परिवेश प्रदान किया। उनके विचारों में कहीं भी अस्पष्टता और रहस्यवादिता नहीं मिलती। आत्मविश्वास के झेत्र में वे अपनी मिसाल आय थे। उन्होंने वेदों के आधार पर आर्य समाज की नींव ढाली। उनके अनुसार वैदिक धर्म ही सत्य,

सार्वभौम सर्व वास्तविक धर्म है। आपने वैदों को शशवत बतलाते हुए उन्हीं के अनुस्य सभी को आवरण करने का उपदेश दिया। संसार का उपदेश करना आर्य समाज का प्रमुख उद्देश्य है। इसमें जाति- भेद और मनुष्य-मनुष्य या स्त्री पुरुष में असमानता के लिए कोई आनंद नहीं था। इस तरह से यह एक लौक तात्रिक दृष्टि थी। अविद्या का नश और विद्या की वृद्धि करना और सबकी उन्नति को ही अपनी उन्नति समझना इस समाज के प्रमुख सिद्धान्त हैं। इस प्रकार सामाजिक और नैतिक मूलयों को दृष्टिगत रूप से हुए आर्य समाज ने एक आचार संहिता बनाई थी। स्वामी जी वैदिक धर्म के प्रभार व्याख्याता थे इसके बावजूद वे समाज के भौतिक प्रगति के लिए पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को आवश्यक मानते थे। इसी आवश्यकतापूर्ति को ध्यान में रखकर आर्य समाजियों ने देश के अनेक महत्वपूर्ण भागों में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की।

स्त्री शिक्षा उन दिनों अनुचित समझी जाती थी। स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा के समर्थन में अभियान चलाया। जिसके लिए जगह-जगह पर कन्या पाठशालाएँ खोली गईं। स्त्री-शिक्षा का महत्व समझाते हुए उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'सत्यार्थ-प्रकाश' में लिखा है— स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण आवश्य करना चाहिए।

इस संस्था ने जातिवाद तथा अस्पृश्यता की कटु आलोचना की। इसके अनुसार सामाजिक संगठन की नियंत्रता के लिए इन बुराइयों की समाप्ति अपरिहर्य है। स्त्री-शिक्षा के साथ-साथ अस्पृश्यता निवारण की मुहिम जिस त्वरितता के साथ प्रारम्भ की गई वह प्रशसनीय थी। अस्पृश्यता निवारण, भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के लिए एक आवश्यक अंग बताया गया। सभी जातियों को परस्पर संबंध रखने की शिक्षा दी। अपनी आत्मा की आवाज पर वह कार्य न करने की सलाह दी गई जिसे आत्मा अपवित्र सर्व अनुचित माने। जाति-पाति का आधार जन्म से नहीं कमसि है इस सिद्धान्त की स्थापना की गई।

प्रिय

हिन्दूवादी दृष्टिकोण रखने के बाद भी आर्य समाज ने राष्ट्रीय विचारधारा की ओर बढ़ाने में जो योगदान दिया वह अस्वर्यजिनक किन्तु प्रशंसनीय है। आर्य समाज के प्रति ब्रिटिश सरकार के कहे रूप के बावजूद उत्तर भारतीय जन मानस के आचार-क्रियाएँ, रहन सहन और साहित्य-संस्कृति पर आर्य समाज का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित हुआ। डॉ. लक्ष्मीसागर वाणीय ने उचित ही कहा है—“स्वामी दयानन्द आधुनिक भारत के महान् नियतिव्याखों में से हैं। सुधारवादी सनातनधर्मियों के हाथ में बांडोर होते हुए भी हिन्दी साहित्य आर्य समाज से प्रभावित हुए बिना न रह सका। उसने साहित्यियों को तरह-तरह के विषय सुझार और भाषा में संस्कृत-तत्त्व को प्रोत्साहन दिया।”<sup>13</sup> आर्य समाज ने सदियों से सौधी भारतीय आत्मा को झक्खोर कर छहा थिया तथा आत्मा की बलिष्ठता के लिए सामाजिक तथा राजनीतिक दृढ़ता को आवश्यक बताया। भारतीय राजनीतिक जीवन की आर्य समाज की जो सबसे बड़ा देन है वह यह है कि उसने राष्ट्रीयता की ज्योति को सफलतापूर्वक प्रज्वलित किया। स्वामीजी ने अपने जैवन्य से जीवन में सत्य को प्रचारित किया और मूलयों की प्रतिष्ठा की। निश्चय ही दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना सर्व उसके माध्यम से समाजसुधार संबंधी अनेक अन्दौलन चलाकर प्राचीन, जर्जर, अवाक्षित मान्यताओं को विशंखालित कर नवीन मान्यताओं और मूल्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया जिसका प्रत्यक्ष अनुभव हम आज अपने समकालीन जीवन में भी करते हैं।

३) रामकृष्ण मिशन — स्वामी रामकृष्ण परमहस के स्वर्गवासी होने के बाद उनके योग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसका उद्देश्य रामकृष्ण द्वारा मानवता कल्याण हेतु प्रतिष्पादित उन सिद्धांतों को प्रतिष्पादित करना था जिसकी आवश्यकता समाज की थी। स्वामी रामकृष्ण सभी धर्मों में एक ही सत्य के दर्शन करते थे। इसी धारणा का समर्थन करते हुए विवेकानन्द ने उस मिशन के माध्यम से मानवीय समता में विश्वास व्यक्त करते हुए जाति, सम्प्रदाय, लुआबूल आदि का विरोध किया। मिशन के सिद्धांत के अनुसार ईश्वर सर्वज्ञप्रब्र

व्यापक है और सभी जीवों में विद्युमान है इसलिए किसी भी प्रकार का भैदभाव मूँहता ही है। गरीबों को फ़ूँगा राखकर धारण पूजा से भगवान् प्राप्त नहीं होते। भगवान् की प्राप्ति तो आत्म-क्षिवास, आत्मसंयम तथा पीढ़ित लोगों की सहायता से होती है। सामाजिक समन्वय, क्षिव-बन्धुत्व, व्यापक धर्म तथा जनसेवा जैसे महान् आदरों की मृत्यु में प्रतिफलित करने का प्रयत्न इस मिशन ने किया जिसके परिणामस्वरूप मिशन ने समस्त विश्व के मैं औषधालयों, वाचनालयों शिक्षण संस्थाओं तथा मंदिरों आदि की व्यापक स्तर पर स्थापना की।

स्वामी विवेकानन्द वैदान्त को मानने वाले धर्म धुरुष होने के साथ साथ स्वदेश प्रेम की भावना से जीत-प्रौत थे। देश की स्थिति के संबंध में पर्याप्त चिन्तन मनन करते थे। उनके चिन्तन में प्राचीन आध्यात्मिकता और नई प्रगतिशील चिन्तनधारा का सुदूर सम्बन्ध मिलता है। वे संकोष धार्मिकता से ऊपर उठकर सौचते थे। “उनके अनुसार धर्म वह है जो शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति दे आत्मसम्मान और राष्ट्रीय गैरव प्रदान करने में सहायता करे।”<sup>14</sup> आपने हीनता की भावना में जड़दे देश को अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति, आध्यात्मिक चिन्तन विश्व के अन्य देशों की तुलना में ऊँच और श्रेष्ठ है। स्वामी विवेकानन्द ने पास्चात्य भौतिकवाद की निसारता की और भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए बताया कि हमारी संस्कृति, हमारी परम्परा में भी ऐसा बहुत कुछ है जिसपर हम गर्व कर सकते हैं।

स्वामीजी आजीवन रामकृष्ण परमहंस व्दारा दर्शाए महानपथ पर चल-कर अन्य लोगों के पथ-प्रदर्शकि बने रहे। आप ने “प्राचीन धर्म शास्त्रों की झोज सर्व प्रचार कर जीवन-मूल्यों की धारणा को स्वीकार करते हुए भी सामयिक मूल्यों के प्रति भी पूर्ण सज-गता का परिचय दिया है। देशभौत और राष्ट्रप्रेम जैसे मूल्यों को स्वयं स्वामी जी नेस्वीकार जनता में उनका प्रचार भी किया।”<sup>15</sup>

छ) धियोसौफिकल सौसायटी — भारतीय धार्मिक परम्परा पर आवारित इस सौसायटी की स्थापना सन् 1875 में रूसी महिला मदाम ब्लावत्सकी और औत्कार्ट ब्दारा न्यूयार्क में हुई थी। इस संस्था के दोनों संस्थापक भारतीय दर्शन, विचारधारा से प्रभावित थे और मानते थे कि भारतीय इतिहास और दर्शन विश्व-बन्धुत्व की परम्परा के अनुकूल है। इस सौसायटी का प्रमुख उद्देश्य विश्व-बन्धुत्व की स्थापना करना था जिसमें वर्ण, जाति, धर्म आदि के भेदभाव की भावना से ऊपर उठकर किंव के आदरशात्मिक, साहित्य तथा तार्किक अध्ययन पद्धति को बढ़ावा देना समावित था। भारत में इस संस्था की शाखा सन् 1882 में जौली गई इसके एक वर्ष बाद एक आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेन्ट इसके प्रचार एवं प्रसार में तनमन से जुट गई। उन्होंने अपनी कार्य कुशलता एवं असाधारण व्यक्तित्व के द्वारा अनेक शिक्षित भारतीयों को इस संस्था की ओर आकृष्ट किया। सौसायटी ने भारत वासियों को अपने समाज के प्रति आकृष्ट होने की भी सलाह दी जिसके परिणामस्वरूप अग्रीजी शासनकाल में भारतीयकरण की प्रक्रिया त्वरित गति से प्रारम्भ हो सकी। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने सम्पूर्ण देश का दोरा कर, धर्म की ओर शिक्षा के क्षेत्र को व्यापक करते हुए हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता के पक्ष में औजस्वी भाषण दिए तथा आगे चलकर वह भारतीय राजनीति की एक महत्वपूर्ण कही प्रमावित हुई। उनके कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने लिखा था कि “उन्होंने अपना सर्वोच्च भारत के लिए बलिदान कर दिया और उस सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि को तैयार किया।”<sup>16</sup> कालान्तर में धियोसौफिकल सौसायटी ने अपने आदशों को मूलैत्य प्रदान करने हेतु रिक्षण संस्थाएँ भी जौली।

निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि धियोसौफिकल सौसायटी ने एक और भारतीय जनता को उसकी प्राचीन संस्कृति, कला, इतिहास एवं परम्परा आदि के बारे में सचेतकर उसमें परम्परागत मूलयों के प्रति जागृति उत्पन्न की तथा उन मूलयों के महत्व की व्याख्या और समर्पण किया तो दूसरी ओर वैज्ञानिक अध्ययन, तार्किक चिन्तन पक्ष की बढ़ावा

देकर भारतीय जन मानस को सामाजिक मूल्यों की ओर प्रेरित और जागृत किया। सौसायटी और रामकृष्ण मिशन ने अतीतगौरव के प्रति सम्मान तथा वर्तमान के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहना सिखा कर सम्बवयवादी दृष्टिकोण का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया। सेनी बैसेन्ट की जागरण ज्योति से कई भारतीयों की अन्तर्रात्मार्थ जागृत हुई और देश प्रेम तथा स्वाधीनता प्राप्ति के लिए उद्घत हुई। बाद में इसके सुफल सामने आए। परिणामस्वरूप आज हम स्वाधीनता की छुली फवा में सक्षि ले रहे हैं।

### उ) बीसवीं सदी के समाजसुधार आन्दोलन

बीसवीं सदी में समाज सुधार आन्दोलनों की नई आयाम प्राप्त हुए। इस सदी के प्रारम्भ में गोपाल कृष्ण गोडाले तथा महात्मा गांधी जैसे युग पुरुष दृष्टि पटल पर अवतरित हुए। गोडाले ने सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से भारतीय जन मानस को सुखाव <sup>भृकाव</sup> समाज सुधार तथा भारतीय संरक्षिति की ओर करने के प्रयास किए तथा 'परम्परा गत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए समाजसुधार ब्दारा सामयिक समस्याओं के प्रति सज्जगता लाकर सामयिक मूल्यों को भी स्वीकारा।'<sup>17</sup> महात्मा गांधी एक उच्चकौटि के समाजसुधारक थे। उन्होंने समाज सुधार को प्रमुख तथा राजनीति को सामान्य दृष्टि से देखा। उनकी धर्म, जाति से ऊपर उठकर सदैव मानव कल्याण की प्राथमिकता दी। उनकी दृष्टि में मानव धर्म सर्वोत्तम धर्म तथा सेवा और प्रेम समक्ष सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के माध्यम थे। अहिंसा उनके प्रत्येक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक अस्त्र था। गांधीजी ने सत्य अहिंसा के बल पर अपने जीवन के सभी संग्राम जीते तथा जनता की सेवा की। आपने हरिजनों के सामाजिक स्तर को उठाने की दृष्टि से हरिजन सुधार आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बताया।<sup>18</sup> तथा अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ किया। गांधी जी ने समाजिक जीवन की विषमता तथा क्षज्य बुराइयों के

उन्मूलन हेतु कुछैक प्रकार के संघों की भी स्थापना करवाई। बुखाबृत जातिवाद, स्त्रीशिक्षा, बाल शिक्षा विवाह, पदभिधा, विधवा पुनर्विवाह आदि के समाधान हेतु व्यापक जन समर्थन जुटाने का प्रयास किया। समाज में प्रचलित देशदस्ती प्रथा एवं वैश्यावृत्ति को ढटाने के लिए भी उन्होंने चेष्टा की। उन्होंने देश वासियों से समाजहित में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आहवान किया। मंदिरापान का त्याग करने की कहा तथा परिवार एवं समाज की आर्थिक दशा सुधारने हेतु चरणा कातने एवं छादी पहनने पर भी जोर दिया। शोषण की प्रतीक प्रस्त्रात्य सभ्यता का बहिष्कार किया। कुल मिलाकर गौधीजी ने स्वदेश प्रेम, स्वराज्य प्राप्ति तथा समाज की दयनीय दशा की सुधारने के लिए सेसे सराहनीय प्रयास किए जिनसे सत्य, अद्वितीय ऐसे मूर्य उभरकर सामने आए जिन्होंने न केवल भारत अपितु समस्त विश्व को ज्ञान की ज्योति दिलाई।

महात्मा गांधी के पद चिह्नों पर चलते हुए हीरा<sup>१९</sup> पडित जवाहरलाल नेहरू ने समाजवाद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रयास किए। एक बार गौधीजी ने नेहरू के बारे में कहा था कि " वह वर्तमान समस्याओं का निवारण करके ही रहेगा यही कारण है कि मैं उसे अपने उत्तराधिकारी के रूप में पाता हूँ। "<sup>१९</sup> नेहरू ने आर्थिक सुदृढ़ता के लिए पौजीवाद तथा मज़दूर श्रमिक की झुशाहली के लिए मार्स्सवादी चिन्तनयुक्त मिली जुली व्यवस्था की कृपना की। वे राष्ट्रीय दित में पश्चिमीकरण के हामी थे बशते उससे राष्ट्रीय सक्ता एवं अङ्गिता को चुनौती न मिलती है। उन्होंने देश में धर्म निर्पेक्षता के पक्ष में वकालत की ताकि सभी धर्म समान स्व से फूले-फले। ये कुछ ऐसे मुद्रे थे जिन पर नेहरू ने अपनी विचार प्रकट किए तथा इनके पक्ष में कार्य किया।

इन सुधार आन्दोलनों से भारतीय जन-जीवन में नई चेतना, नए मूर्यों के बीज पढ़ गए थे जो कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समुचित पर्यावरणिक परिवेश पाकर

### संख्यिकीय संर्धा

फ्रेंक टित हुए तथा समय के मार्ग के अनुसार पुष्टि और पहलवित होते हुए वर्तमानस्वरूप को प्राप्त हुए।

स्वार्तन्त्र्यपूर्व तथा स्वार्तन्त्र्योत्तर के मध्य का काल 'संक्रमणकाल' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। संक्रमणकाल आज भी जारी है। स्वार्तन्त्र्यपूर्व के मूर्यों और आज के मूर्यों में पर्याप्त विषमता दिखाई देती है। ये विषमताएँ क्या और क्यों हैं। इस संबंध में हम स्वार्तन्त्र्योत्तरकालीन विभिन्न परिस्थितियों पर एक संक्षिप्त दृष्टिपात् करना उचित समझते हैं जिससे यह स्पष्ट हो सके कि मूर्य अपनी वर्तमान स्थिति में आते-आते किन-किन परिस्थितियों से गुजरें हैं तथा उनकी वर्तमान स्थिति के लिए कौन-कौन से कारण उत्तरदायी हैं।

#### 4) स्वार्तन्त्र्योत्तर भारतीय परिवेश : सक्रियता

सन् 1857 की असफल छान्ति के बाद १० वर्ष तक चलने वाले सतत संघर्ष के फल स्वरूप १५ अगस्त १९४७ को हमें स्वाधीनता तो मिली लेकिन देश विभाजन, तज्जन्य भयावह साम्प्रदायिक हिस्सा का दौरा, भीषण रक्तपात, उत्पीड़न, अत्याचार, अमानुषिक व्यवहार जैसे महा तांडव के कठु अनुभव भी हमें गले के नीचे उतारने पढ़े जिसने कुछ काल के लिए हमारी चेतनशीलता को संज्ञाशूद्य बना दिया। इस लम्बे संघर्ष सर्व देश के अंगभी ने भारतीय मानसिकता को नए आयामों की दिशा में सेवने को प्रेरित किया।

बादामसिंह रावत ने स्वार्तन्त्र्योत्तर काल को मोटे तौर पर दो भागों में बाटा है— १) मोह ग्रस्तता का काल, २) मोहभंग का काल।<sup>20</sup> मोहग्रस्तता के काल की भेदस्त्युग के नाम से भी पुकारा जा सकता है जिसमें भारतीय जनता को अनेक आश्वासनों के सब्ज बाग दिखाए गए लेकिन यथार्थ में कुछ नहीं हुआ। जनता को अपनी मनचाही सरकार जू

चुनने का अधिकार तो था। उसने इच्छानुसार सरकार को चुना भी लेकिन वह सरकार उसे मात्र आकर्षक आश्वासन और रंगीन सपनों के अतिरिक्त कुछ न दे सकी। जनता के धैर्य का बौध तब टूट गया जब 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण करते हुए भारतीय प्रभुसत्ता का अतिक्रमण किया।

भारतीय संक्षिप्त में सामृद्धवाद, सामूह्यवाद, आर्थिक और सामाजिक शोषण के छूनी चंगुल से मुक्त मानव की कल्पना की गई थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वतंत्रतापूर्व की परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता थी। लेकिन दुर्भाग्यवश हम देसा करने में असफल रहे। हमें स्वतंत्रता प्राप्त तो हुई लेकिन शासन व्यवस्था आर्थिक परिवर्तन के साथ पूर्ववत् ही चलती रही। परिणामस्वरूप सभी क्षेत्रों यथा राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में हमारी प्रगति संतोषजनक नहीं रही। जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में हम पिछड़ते रहे। जन समृद्धि का स्थान जननिवेदनता सर्व जन आश्रोश ग्रहण करते गए। इस अवस्था के लिए हम सभी समान रूप से उत्तरदायी रहे हैं। सन् 1960 के बाद तो सार्वजनिक जनजीवन की अशाओं और आकाङ्क्षाओं में भारी अव्यवस्था, बिधाराव दृष्टिगोचर हुआ जो कि हमारी असफलताओं का आत्माव्यानहीं है। इसका एक ज्ञाका निम्नप्रकार से स्पष्ट करके देखा जा सकता है।

b) राजनीतिक परिवेश — स्वातंत्र्योत्तर भारत की सर्व प्रमुख राजनीतिक उपलब्धि भारतीय संविधान की निर्माता थी जिसके अधीन सभी भारतवासियों को मौलिक अधिकारों के अस्त्रों से सज्जित किया गया। लेकिन ये अस्त्र व्यावहारिक स्थ से निर्धारित प्रमाणित हुए जब पाया गया कि जनता अन्, जल, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास तथा कस्त्र क्रैंसी मौलिक आवश्यकताओं से वचित है। शिक्षण संस्थाएं तथा स्वास्थ्य केन्द्र जैसे जौले अवश्य गए लेकिन इनका उपयोग अर्थ संपन्न लोग ही कर सके। भारतीय संविधान में सामृद्धीय तथा पूजीवादी परम्पराओं को सिद्धान्ततः

नकारा तो गया लैकिन आज व्यवहार में यही परम्पराएँ फल-फूल रही हैं।

इस प्रकार संविधान के माध्यम से जनता को दिस गए आश्वासन अपूर्ण रहे। कल्पनाओं के रूपीन, स्वजिल संसार में छोर्ह जनता का जब कटु, यथार्थ से साक्षात्कार हुआ तो उसने स्वयं को निराशा और अधिकार के बियावान-बीच्छ में पाया। यह स्थिति सातवें दशक के प्रारम्भ की है जिसे 'मौहभी' की स्त्री से अभिवित किया गया है। जनता में खामोशिक आक्रोश देखा गया और इसके परिणामतः सत्ता की राजनीति के समानस्तर विरोध की राजनीति उभर कर सामने आयी। इस विरोधी राजनीति का नारा था कि जनता की अपरिपूर्ण जाकांक्षाओं, द्वितीयों को पूर्ण करना तथा संविधान प्रदत्त अधिकारों और सुविधाओं को यथावत् जनता के लिए मुहैया कराना। अपार्ग्यवश इस विरोधी राजनीति के पास कोई निश्चित, निर्धारित कार्यक्रम न आ सका और न ही समाज, विकास की कोई निश्चित स्थित ऐआ। इसके अतिरिक्त यह आपसी फूट किंदेष, ईर्ष्य के घड़्यन्त्रों का शिकार होती रही है और आज भी झुउसकी स्थिति कुछ भिन्न नहीं है। आज तो देश की विरोधी राजनीति में इतना अधिक विभाजन परिलक्षित होने लगा है कि आम मतदाता दिग्भ्रमित है वह सही किसे माने? इसका परिणाम है केंद्र तथा राज्यों में भिन्न-भिन्न दलों की सरकारें। इन सरकारों की कार्यशैली यह है कि इनके कार्यकाल का अधिकांश समय एक दूसरे की टार्गेट्सीटने तथा उनपर दोषारोपण करने में ही जाता है।

इधर समय के साथ देश में राजनीतिक महत्व के कुछ प्रमुख निर्णय हुए सन् 1969 में बेंकों का राष्ट्रीयकरण तथा सन् 1970 में पूर्व राजाओं, न्यायों के प्रिवीपर्स की समाप्ति कुछ ऐसे ही निर्णय थे जिनसे सामन्य जनता को कुछ राहत की अनुभूति हुई।

अर्थस्ता के पुजारी बापू के शातिष्ठिय देश को एक के एक कर तीन-तीन विनाशकारी युद्धों की भयावह विभाषिका से गुज़रना पढ़ा। गांधी, नेहरू, शास्त्री, लोहिया,

जयप्रकाश नारायण, तथा इन्दरा गधी का भारतीय राजनीति के बिंदु- पटल से औंकाल होना भी राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सभ्य ही देश के विभिन्न भागों में चल रहे साप्रिदायिक उग्रवादी अन्दीलनों ने भी भारतीय राजनीति को अपने भद्रे रांगों से कुरुप बनाया है।

राजनीति के मन्दिर समझे जाने वाली संसद और विधान सभाओं में चलने वाली परस्पर धीर्गामूरती, पाठुकाम्प्रहार तथा अप्रिय वाक्‌युध आज के राजनीतिक छौड़ालेपन को ही नग्न करती हैं।

आज का राजनीतिज्ञ जनसेवक के स्थान पर जनशोषक बन गया है। वह वह किसी भी पार्टी का ही कोई अन्तर नहीं पहता। उसका एक मात्र उद्देश्य है ग्रष्टाचार, जनशोषण। और सभवतः यही उसकी जीविका के ब्रौत भी हैं। वह विगत के आदशवादी महान नेताओं, अपनी पार्टी के उच्च आदर्शों की दृढ़ाई देकर यैन-कैन प्रकारण अपना ऊलू सीधा करना जनता है और सेसाही कर भी रहा है।

अ) आर्थिक परिवेश — अग्रेजों की भारत विभाजन नीति के दृष्टिभाव जन-जीवन के सभी क्षेत्रों पर परिलक्षित ही रहे थे। सौ आर्थिक क्षेत्र भी इसकी मार से बच न सका। भारत विभाजन के समय देश की अधिकांश जनता के पास न तो भर पेट भोजन ही मुहैया था और ऋण न शरीर ढैंकने भर को कष्टहा ही। इस दिशा में विकास की दृष्टि से नई आर्थिक नीति का निर्माण हुआ। 1955 में भारत- रूस की सरकारों में, भारत में औद्योगिक विकास लाने के लिए समझौता हुआ। कई आर्थिक संस्थाओं यथा इंपीरियल बैंक, जीवन बीमा, कॉपनियों, सौने की झानों सर्व द्वारा जहाजों की कॉपनियों आदि का राष्ट्रीयकरण हुआ। पडित नेहरू की अध्यक्षता में पहली दो पर्यावरणीय योजनाओं का निर्माण सर्व उनका सफल कार्यविन्यन हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप देश की मृत प्रायः अर्थव्यवस्था में कुछ प्राण संचार हुआ तथा नए औद्योगिक विकास से

बेरोजगारों की रोजगार के अवसर सुलभ हुए तथापि निम्न स्वर्ण मध्यम वर्ग को अपेक्षित लाभ नहीं हुए। जनसंख्या के शनैः शनैः होते विफ्फोट स्वर्ण कलास्तर में देश पर अप्रत्याशित रूप से लाए गए युधदों की विधीयिका के फलस्वरूप एक और प्रतिरक्षा व्यय पर भारी वृद्धि हुई तो दूसरी और वृष्टि उत्पादन में भारी कमी हुई अतः मूल्य सूचकांक अनायास ही नहीं ऊँचाई बढ़ने लगा। दुर्भाग्यवश इसी अनुपात में जनता की आय में वृद्धि न हो सकी। मुद्रास्पीति की स्थिति उत्पन्न हुई और सन् 1966 में रूपरस का अवमूल्यन किया गया। सरकारी कर्मचारियों ने अपनी कम आय की प्रतिपूर्ति में रिश्वत को सहजता से स्वीकारना प्रारम्भ किया। उधर ग्रामीण निरीह भौली जनता असहाय बनकर लुटती रही। ग्रामीण वृषक वर्ग को अपने उत्पादन को तैयार करने में कई प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता लैकिन उसे अपनी उपज का उचित दाम न मिल पाता। जनता में रोष भड़कता गया। सन् 1969 के चुनाव में कांग्रेस का कई राज्यों में पत्ता साफ़ हुआ। बिगड़ती आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कई आर्थिक संथाओं के राष्ट्रीयकरण तथा पूर्व राज्यों के प्रिवीपर्स को समाप्त करने जैसे महत्वपूर्ण साहसिक निर्णय सरकार ने लिए। सन् 1970 ई में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना औद्योगिक तथा राजीकीय क्षेत्र के अधिक विकास के लक्ष्य को लेकर प्रारम्भ हुई तथा 1979 में पांचवीं पंचवर्षीय योजना शुरू ही गई। दूसरी और सन् 1971-72 में बांग्लादेश की मुक्ति संग्राम के परिणाम स्वरूप देश में जो कीमतें ऊपर चढ़ी तो महगाई के पिछले सभी कीर्तिमानों को धक्का कर गई। फलस्वरूप जन-असतीष, बेरोजगारी तथा जनसाधारण की हताशा में भारी वृद्धि हुई। देश में देशी-विदेशी कपनियों, दोनों के उत्पादन की प्रचुरता के बावजूद वितरण और उपयोग के स्तर पर शोषण की वृद्धि होती गई। देश की पंचवर्षीय योजनासं अशानुरूप परिणाम नहीं दे पाई। योजनाओं में लगी विदेशी पूँजी के दबाव के दृष्टिरिणामस्वरूप देश को विदेशी दया का मुह ताकना पड़ा। 'स्वतंत्रता के बाद भारतीय इतिहास के अध्याय का सिर्फ़ एक ही नाम दैसकता है—शर्मकाल या शिक्षाकाल।' <sup>21</sup> आज भी हम कर्ज से आकर्ष होने के बावजूद विदेशों में कर्ज के लिए

गुहार लगाते रहते हैं। इस सबके कारण हमारे जीवन में हीनता की वृत्ति का उदय हुआ है।  
इसके चलते देश का मनोबल, संकल्प शक्ति और उसका आत्मबल भी विघटित हुआ है।”<sup>22</sup>

राष्ट्र ब्दारा सचालित पञ्चवर्षीय योजनासँ पूर्णिः असफल रहीं हीं ऐसी बात भी नहीं है। देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की समृद्धि में पर्याप्ति सकारात्मक परिवर्तन देखो जा सकते हैं ये जमीदारी प्रथा के कुम्भनोपरान्त ग्राम्य जीवन में हरियाली और झुशाहाली के कुछ तो दर्शन किए ही जा सकते हैं। हरितक्रान्ति की सफलता को विदेशों में सारांश गया है, जिसने झाड़गान के क्षेत्र में भारत को न केवल आत्म निर्भर बनाया है बल्कि आज भारत पढ़ोसी देशों को झाड़गान ऋण अथवा दान स्वस्य प्रदान करने में सक्षम ही गया है। देश की वैज्ञानिक प्रगति का प्रतिबिम्ब स्पष्टतः विकसित सिंचार्व माध्यमों तथा आवागमन के साधनों में देखा जा सकता है। औद्योगिक विकास ने देश की जनता की आर्थिक स्थिति को समुन्नत बनाने के आशिक सफल प्रयास किए हैं। गाँवों में भी पक्की सड़कें बिजली, रेडियों एवं टेलीविजन के अतिरिक्त ट्रैक्टर आदि का पहुँचना इस बातके प्रमाण की ओर संकेत करता है।

दृभियवश इन उपलब्धियों का वितरण सभी के मध्य समत्त्व से नहीं हो सका। शोषक और शोषित के बीच की झाई बढ़ती ही गई है। निन वर्ग अर्थात् वे शिक्षिये में आज भी पूर्वित जकड़ा हुआ है। पूँजी पर एक वर्ग विशेष का एकाधिकार बढ़ता जा रहा है। देश की अर्थ नीति प्रष्ट राजनीति और लाल फोतशाही के घातक स्वार्थ पूर्ण शिक्षिये में कही हुई है। इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप देश में आज शोषितों का शोषण और शोषकों का पोषण स्वयमेव होता जा रहा है। स्वार्थ, लालच, विलास, असत्य, छल, फोरेब जैसे हेय जीवनमूल्यों की बढ़ोत्तरी साठोत्तरी समाज में हुई है। अर्थात् वे कारण सामाजिक व्यवस्था के वर्तमान ढंगी में परिवर्तन के प्रति विक्षेप की चिन्हारी सुलग रही है। इस आर्थिक विषमता की सार्थक अभिव्यक्ति साठोत्तर हिन्दी नाटक में दृष्टव्य है।

इ) सामाजिक परिवेश -- बीसवीं सदी की वैज्ञानिक प्रगति और ब्रिटिशों की दो सौ वर्ष लम्बी गुलामी ने हमारी सामाजिक स्थिति, रहन-सहन और जीवन- मृत्यों को खिंचौड़कर रखा दिया। सामाजिक जीवन का कोई भी पक्ष इस अव्यवस्था से अपरिचित नहीं रह सका। समाज की गति प्रायः निस्त्वाहित हो गई। किसी समाज की अवस्था एवं उसकी प्रगति उस समाज की समकालीन राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर आधारित होती है। सौ पूर्व विवेचित राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव अपरिहार्यतः हमारी सामाजिक परिस्थितियों पर पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमने आधुनिक बौद्धिक, प्रजातात्रिक, औद्योगिक दृष्टि से सुविकसित समाज की क्षणना की जो व्यक्ति स्वातंत्र्य का पूर्ण हासी हो। लैकिन हमारे समने जिस समाज का प्रादुर्भाव हुआ वह पूँजीवादी और समाजवादी व्यक्तिता का एक छिकड़ी नमूना है। हाल ही में सातवें दशक के दौरान सामाजिक परिस्थितियों में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। इनमें से प्रमुख है नारी स्वातंत्र्य, युवापीढ़ी का आक्रोश, मध्यमवर्ग की घृमिका, जाति-व्यक्ति परिवार में विघटन एवं साकृतिक अवमूल्यन आदि।<sup>23</sup>

स्वातंत्र्योत्तर जन्मी और साठोत्तर के दशक में पनपी युवा-पीढ़ी की परिवर्शा ऐसे परिवेश में हुई जब भारतीय समाज में संस्कृति का अवमूल्यन ही चुका था। साठोत्तर सामाजिक परिवर्णन में स्वार्थ, अनीति, प्रष्टाचार रिश्वत्कोरी आदि की दुन्दूभी तो गैज ही रही है साथ ही नैतिक एवं चारित्रिक पतन भी पराकाष्ठा की सीमाओं को चूम रहा है। इस काल की युवा पीढ़ी इस परिवेश से दृष्टिभावित हुए बिना कैसे रहती। अतः इसका प्रभाव नव-युवकों पर पड़ा और ऐसा परिणामस्वरूप नयी पीढ़ी में कैवारिक विद्रोह और सेधदान्त्रिक आजकला का उम्मेद हुआ। विज्ञानवादी आधुनिक युग में नई पीढ़ी पुरातन मूल्यों की दुत्कार कर पुरानी पीढ़ी से कट गई और ऐसी दुनिया के स्वर्ज देखने लगी “जो मूँदा ग्रहों से मुक्त होगी, जहाँ निष्क्रिय परम्पराओं का उन्मीलन कर दिया होगा, जहाँ शूल पर प्रवार किस जासगी, जहाँ उन्मुक्त सेक्स (अस्तील नहीं) होगा। जहाँ निराकारी, बीमारी और भैंसभाव

लेश मात्र भी नहीं होगा, उसका व्यक्तित्व गरिमापूर्ण होगा और जहाँविज्ञान समृद्ध नेत्रिक  
वातावरण में प्रति फलित होगा।”<sup>24</sup>

युवकों के वर्तमान दिशाप्रभम के लिए कोई स्क कारण उत्तर-  
दायी न होकर राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक आदि सम्बन्धों समीकरणों का योग है।  
नेतृत्वाधार में आज की युवापीढ़ी हिप्पी संस्कृति में पल और ढलकर दिशा हीनता के उस विकृत  
कगार पर पहुँच चुकी है जहाँ वह केवल सिनेमाथरों पर धरना देकर टिकिट सस्ता कराने को  
जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य तथा सहुकों, चौहाहों बसों पर लट्ठने मस्तैने को ही मूल्य समझ  
बैठी है।<sup>25</sup> आज पिता की दृष्टि में हेय सभी कार्य पुत्र की दृष्टि में श्रेय हो गये हैं। पिता  
ब्राह्मण पुत्र की वर्जिति किया जाना न केवल महत्वहीन हुआ है अपितु पिता की वर्जना का पुत्र  
ब्राह्मण प्रतिरोध किया जाता है। मातापिता तथा सत्तान के आपसी संबंध अपने अर्थ तो  
बहुत पहले ही चुके थे लेकिन अब चिन्ताजनक पहलू यह है कि माँ-बाप अपने ही घरमें बच्चों  
के लिए अवाक्षित वस्तु बनकर बच्चों के ब्राह्मणतात्त्व के बढ़ावा देने तथा अपने बच्चों के दया  
पात्र बने हुए हैं। यह में बुजुर्गों की भूमिका चौकीदार अथवा धरौलू नैकर से श्री बदतर ही  
गई है।

नवशिक्षित युवा पीढ़ी पास्चात्य भौगवाद की ओर ही आकर्षित हुई और उसने इसी प्रकार की भौगवादी संस्कृति को समाज में बढ़ावा दिया। इसके फलस्वरूप स्वर्थ जैसे मूल्य का जन्म हुआ। उसके मन में स्वदेशी संस्कृति, स्वभाषा, ज्ञान संस्कारों के प्रति  
न कोई आस्था रही और न कोई सम्मान।

हमारे राष्ट्र निमतियों ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में समाजवाद सर्व समानता का नारा देकर छुआहाली लाने का स्वर्ज देखा था, लेकिन राष्ट्र की धारा निर्धारित

लक्ष्य से पश्चामी होकर शोषित और शोषक की दो प्रमुख धाराओं में विभक्त हो गई। जो कार्य नहीं करता है उसे जीवन की सभी ऐतिक सुविधाएँ सहज उपलब्ध हैं। जबकि उत्पादक को दिन में दो बाद पेट भर कर रोटी भी उपलब्ध नहीं हो पा रहीं हैं। गावों की हालत दिन-ब-दिन पतली होती जा रही है। शहर ग्रामीणों के लिए आकर्षण का केन्द्र बने। रोजगार की अशा में ग्रामीण अपना गाँव छोड़कर शहर जाता है जहाँ पर वह शहर की संस्कृति को अपना नहीं पाता गाँव की संस्कृति को छोड़ नहीं पाता। पलतः ऐसे सारल चिल्ल, निष्कपट व्यक्ति त्रिशूल बनकर अपनी अधक्षरी जिन्दगी जीते हैं और इस प्रकार वे न घर के रहते हैं न घाटके। इसके अतिरिक्त आज पदने लिखने के बाद बेटा दूर किसी शहर में जाकर नौकरी करने की प्राथमिकता देता है क्योंकि यही उसकी शिक्षा का सक मात्र उद्देश्य और समय की मांग है। अपने बूढ़े माँबाप के प्रति वह कर्त्त्यवीन हो गया है। इस प्रकार वह अपने आप को इकाई परिवार में ही समित कर देता है। इससे संयुक्त परिवारों को नकारने स्वं उनके विघटन की स्थिति उत्पन्न हुई है।

नारी स्वतंत्रता के नाम पर नारी की पुरुष के समक्ष अधिकार प्रदान करने के उद्देश्य से अनेक प्रकार के कानून बनाकर सैवेशानिक प्रयास किए गए। तस्वीक की भी कानूनी वैधता, पैतृक सम्पत्ति में नारी को समान हिस्सा, दत्तक ग्रहण अधिकार बहुपल्लीत्व पर रोक, बालविवाह, सती-प्रथा दहेज-प्रथा जैसी अमानवीय प्रथाओं पर नियंत्रण से नारी की स्थिति में निसदैह ही सुधार हुआ है। परिणामतः नारी संबंधी पुरानी धारणाओं के स्थान पर नवीन मान्यताएँ सामने आई हैं। कल को धूपटन्त्र के पीछे मुह छुपाकर घर की चार दीवार में कूप महूक बनकर रहने वाली नारी परिधान, वैशभूषा स्वं आचार-विचार से पूर्णतः अधुना बनकर पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है। स्त्री-पुरुष के पास्पर संबंधों में भी नए आयाम स्थापित हुए हैं। 'नारी पर पुरुष के स्वामित्व की धारणा' अब बीते युग की कल्पित कथा होगई है। अब पुति मोहर महोदय का द्वायरा पत्नी के लिए देवता

नहीं अपितु मित्र तक सीमित हो गया है। इस प्रकार पति-पत्नी जैसे घनिष्ठ आत्मीय संबंधों में भी दरार पढ़ने लगी है। आजके युग में स्वयं को प्राप्त अधिकारों के बल पर नारी अधिक सचेतन, अस्मनिर्भार और स्वतंत्र व्यक्तित्व संपन्न हुई है। लेकिन साथ ही इस नारी-पुरुष असामिज्ज्य जैसी समस्याएँ उभरकर सामने आई हैं। स्त्रियों पुरुषों के समान शिक्षा ग्रहण कर नैतिकी कर रही है जहाँ पर वे नस पुराने के संघर्ष में मानसिक संतुलन कायम नहीं रख पा रहीं हैं। इससे च उनके मानविक व आन्तरिक संघर्ष की स्थिति सामने आई है। लेकिन नारी आज पुरुषों के ब्दारा की गई किसी भी असमानता, अन्याय आदि के प्रति अपनी आवाज उठाने में नहीं चूकती है।

आज नारियों के विकास की स्थिति सर्वत्र व्याप्त हो गई है, ऐसी बात नहीं है। उच्चशिक्षा प्राप्त लड़की भी समाज में शादी के समय स्वयं को लड़के के मुकाबले न्यूनावस्था में पाती है। लड़की देखने, स्वीकार, अस्वीकार करने का सक्रियात्मक अधिकार लड़के को है। लड़की को यह अधिकार नहीं कि वह लड़के को अस्वीकृत कर सके। आज अधिकारी कन्याएँ शिक्षित होकर भी माँ-बाप की छङ्गानुसार ही अपने जीवनसाथी का वरण करने की विवश हैं। देश की नारियों का एक बहुत वर्ग आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहा है जहाँ पारिवारिक सामाजिक तथा पारम्परिक मान्यताओं के कारण नारी आज भी चार दीवारों के अंदर कूप-मँडू बनी हुई तथा ज्ञानता सर्व अशिक्षावश प्रस्तीन मूल्यों यथा पति परमेश्वर सर्व आर्थिक परतंत्रता को यथावत स्वीकार कर 'कौल्ह के बैल' की जिंदगी जी रही हैं।

आज वैज्ञानिक प्रगति के कारण सन्तानि निरोध के व्यापक साधनों से, सामाजिक प्रगति के कारण प्रेमविवाह, अन्तजातीय विवाह जैसी नवीन मान्यताओं ने आज की नारी के जीवन में व्यापक परिवर्तन ला दिये हैं।

कुल मिलाकर आज का सामाजिक जीवन व्यक्ति के लिए महत्व-हीन हो गया है। जीवन-मूल्यों का संकट उत्पन्न हो गया है। आज व्यक्ति अपने मत में आधुनिकता की मृगतृष्णा लिए और दैहिक में सम्मिलित हो गया है। उसे यह पता नहीं छ रहा कि अच्छा क्या है और बुरा क्या? वह दैहिक रहा है। वह अपने परम्परागत जीवन-मूल्यों की भुला बैठा है। 'औ जीवन-मूल्य जो काल-निरपेक्ष मानव मूल्य बने हैं—दया, ममता, करुणा, प्रेम, सहानुभूति आदि को भुला देने से ही किसी व्यवस्थित समाज की रचना नहीं हो सकती और न डगमगाते, पटके, अनैतिक जीवन राष्ट्रीय-सामाजिक, पारिवारिक जीवन को नई दिशा दे सकते हैं।' 26 सेसी डगमगाती मानव मूल्यों की दुःख में भारतीय जन भटकने लगा।"

### ५) मूल्य संक्षण की प्रक्रिया —

अब तक हमने साठीत्तर कालीन जिन परिस्थितियों की चर्चा की वे मानव-चरित्र निर्माण की दृष्टि से कोई सुखद और रचनात्मक परिस्थितियाँ नहीं कही जा सकती हैं। इस चर्चा से हमारे मानस-पटल पर समाज का जो चित्र उभर कर आता है वह हमें बताता है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में विधटन और संत्रास का वर्चस्वरूप पनप रहा है। आज के विविक्षित जीवन-मूल्य हमारे परम्परागत जीवन-मूल्यों की प्रतिक्रिया में ढटे हुए हैं। "प्राचीन मानव आदिकाल से जिन पारम्परिक नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को संजोता चला आ रहा था, आधुनिक काल में उनके ऐहस्स की भावना बल अङ्ग पकड़ने लगी। उनके स्थान पर जैविक प्रवृत्तियों और लैंकिक जगत के आधार पर निर्मित नवीन मानवमूल्यों को मस्तिष्क दी जाने लगी।" 27 व्यक्ति आज के नए जीवन-मूल्यों को प्राथमिकता के आधार पर आत्मसात कर रहा है। इससे जीवन में विकृतियों को ही प्रोत्साहन मिल रहा है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि क्या कारण हैं जिनसे ऐसे विधटन कारी मूल्य हमारे समाज में पनपे। मूल्य युग तथा परिस्थिति सापेक्ष होते हैं। युग एवं परिस्थितियाँ परिवर्तनशील हैं। इसी प्रकार यह स्वाभाविक है कि समय

की आवश्यकतानुसार मूल्य भी स्वतः परिवर्तित होते रहे। यह प्रक्रिया आदिकाल से सृष्टि तक हर क्षेत्र में निबंध स्प से चलती रही है। अतः नया कुछ भी नहीं है।” युगीन परिस्थितियों में परिवर्तन होता जाता है, उन्हीं के अनुकूल मानवीय मूल्यों में परिवर्तन आना एक स्वाभाविक क्रिया है। यही कारण है कि आज का साहित्यकार प्राचीन मन्यताओं और मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों की प्रस्थापना को एक स्वाभाविक सर्व आवश्यकता प्रक्रिया के स्प में स्वीकार कर रहा है।<sup>28</sup> जहाँ हम कुछ ऐसे मूल्यों को देखते हैं जो युग परिवर्तन के साथ बदलते नहीं अपितु स्थ रहते हैं तो वे शाश्वत-मूल्य होते हैं और शाश्वत मूल्यों में परिवर्तन नहीं होता अपितु संदर्भों के अनुसार उनके स्वरूप के बारे में हमारे दृष्टिकोण ही बदल जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकता के साथ-साथ मूल्य परिवर्तन एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। क्योंकि “आधुनिकता के परिणामस्वरूप मूल्यों में परिवर्तन आता है और मूल्य परिवर्तन के बारा ही दृष्टि का आधुनिकीकरण संभव होता है।”<sup>29</sup> अतः हम कह सकते हैं कि मूल्य परिवर्तन और आधुनिकीकरण एक ही सिर्फ़ के दो पहलू हैं।

शांति भारतीय का मानना है कि वर्तमान समाज में व्याप्त संक्रमणता की स्थिति मूल्यहीनता की स्थिति बन गई है। इसके लिए उनके अनुसार आधुनिक रचनाकार उत्तरदायी हैं। वे कहते हैं कि ‘सृजन के क्षेत्र में मूल्यों के संक्रमण की स्थिति अक्षय-ध्यावी थी। अतः आज का रचनाकार अगर मूल्य हीनता की ही अधुनातन जीवन-मूल्य समझ लेने की शिक्षा में आ गया है तो यह उसकी विवरणता है, जिसका उत्तरदायित्व भी उसी के माथे पर, कम से कम उसकी वरिष्ठ पीढ़ी के माथे पर है।’’... आज मूल्यहीनता ही सबसे बड़ा मूल्य बन गई है।’’<sup>30</sup>

## 6) मूल्य संक्रमण के कारण

अब हम संक्षिप्त में उनकारणों पर दृष्टिपात करेंगे जिनसे मूल्य-संक्रमण या मूल्यविघटन की वर्तमान स्थिति उत्पन्न हुई है। इसके लिए उत्तरदायी कारणों को हम निम्न प्रकार से वर्णित कर सकते हैं—

- अ) आधुनिकता
- आ) विज्ञान तथा बढ़ता औद्योगिकरण
- इ) राजनीतिक परिवर्तन
- ई) आर्थिक दबाव
- उ) धर्म और नैतिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण
- ऊ) सामाजिक सर्व सास्कृतिक कारण

अ) आधुनिकता -- डार्विन ने 'थोरी ऑफ इवॉल्यूशन' की व्याख्या कर के मानव की धार्मिकता में एक झंझावात छहा कर दिया था। डार्विन की व्याख्या को आगे चलकर कार्लमार्क्स सर्व प्रौद्योगिकी ऐसे भौतिकवादी सर्व मनोविश्लेषक चिन्तकों ने सेबल प्रदान किया जिसके फलवरण व्यक्ति का रूटिबादी चिन्तन वैज्ञानिकता की राह चलकर आधुनिकता की ओर उभुज हुआ। जहाँ आधुनिकता अस्तित्व में आती है वहाँ मूल्य परिवर्तन आधुनिकता के कारण ही संभव हो सका है। इस प्रकार 'आधुनिकी कारण और मूल्य संक्रमण सानुबंध है।'<sup>31</sup> अब प्रश्न उठता है कि आधुनिकता क्या है तो इसका उत्तर देते हुए बादमसिंह कहते हैं— 'आधुनिकता एक विचार अथवा जीवन दृष्टि है। आधुनिकता को किसीकाल, देश अथवा जाति की सीमाओं में बौखना सीमित दृष्टिकोण है। क्योंकि विचार अथवा दृष्टिकोण किसी काल अथवा देश जाति की पूँजी नहीं होते।'<sup>32</sup>

आधुनिकता का संबंध अक्सर वर्तमान से जुड़ता है। परिवर्तित परिस्थितियों स्वं घटना चक्र के अनुसार आधुनिकता के संर्दर्भ हर युग में नवीनता लिए हुए प्रस्तुत रहा है और इसी के अनुसार मूल्य आकार ग्रहण करते हैं। वर्तमानकाल में आधुनिकता कुछ अधिक प्रभारता लेकर प्रकट हुई है जिससे मूल्यों में आमूलन्वृत्ति परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं आधुनिकता का व्यक्ति का प्राचीनता से पूर्णतः मौहर्खी हो गया है। मानव रुचि के अनुसार प्राचीन अवधारणार्थ प्रासादिक नहीं रही हैं इससे मानव की वैचारिकता, धार्मिकता, सठिवादिता, साम्प्रदायिकता आदि अनेक क्षेत्रों में व्यापक प्रभजन की स्थिति उत्पन्न हुई और इसीसे मानव जीवन में मूल्य-संक्रमण की व्यापक स्थिति उत्पन्न हुई है। अतः आधुनिकता मूल्य विघटन के लिए उत्तरदायी कारणों में प्रमुख स्थान रखता है।

**a) विज्ञान तथा बढ़ता औद्योगीकरण** — वैज्ञानिक प्रगति तथा तदनुसार पत्तवित होता औद्योगीकरण मूल्य संक्रमण की दिशा में सर्वाधिक सहायक सिध्द हुआ है। तकनीकी विकास से एक और हमारे ज्ञान में वृद्धि हुई तो दूसरी और परम्परागत रुदिवादी धारणाओं का पदार्पण हुआ है और उन पर आधारित मूल्य भी समाप्त हुए हैं। इस वैज्ञानिक प्रगति से अनेक प्रकार की भौतिक सुविधार्थ सामने आयी। मानव स्वयं को नई सुविधाओं स्वं परिस्थितियों के अनुसार ढालता गया। परिणाम ये हुआ कि मानवीचित अधिकारी कार्य मशीन द्वारा होने से मानव और मानवक्रम का अवमूल्यन हुआ। महानगरीय वातावरण में प्रदूषणता में वृद्धि, भावी जीवन के प्रति संदिग्धता एवं असुरक्षा की घारणा में वृद्धि हुई है। इसकी प्रत्यक्ष परिणति मूल्य-परिवर्तन के स्थ में उभरकर हमारे सामने आई है। गिरिराज के शब्दों में 'परिवर्तन शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण जैसी प्रक्रियाओं ने परम्परागत सामाजिक मूल्यों के मैरु दण्ड को ही विश्लेषित कर दिया।'

**इ) राजनीतिक परिवर्तन** — अन्य कारणों के सदूचा राजनीतिक परिवर्तनों ने भी मूल्य-संक्रमण की स्थिति पैदा की है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में उन्मुक्तता एवं स्कृबंदता का माहौल

का गया। राजनीति से नैतिकता हटने लगी और 'जब राजनीति से नैतिकता का लौप होता है और वह केवल सुविधाओं के आधार पर नैतिकता की व्याख्या करने लगती है तो मृत्यों में जो संक्रमण की स्थिति पैदा होती है— मुझे लगता है, वह युग सन् 1948 से ही प्रारम्भ होता है।' 34 व्यक्त मताधिकार ने व्यक्ति में 'अस्तित्ववाद की धारणा' को तो प्रबल किया ही साथ ही इसने व्यक्ति को राजनैतिक हल्कों में प्रतिष्ठा किनारे में सहायता की। राजनैतिक दृष्टि से सरकारने समाज के सभी वर्गों विशेषकर पिछड़े वर्गों को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जिससे सभी में राजनैतिक चेतना जागृत हुई। यह राजनैतिक चेतना का ही परिणाम है कि आज समाज में सभी जाति-वर्णों के लोग सकही घाट पानी पीकर निहरता सर्व स्वतंत्रता से चैन की सौस ले रहे हैं। इस असाधारण किन्तु यथार्थपूर्ण समानता से सदियों पुरानी कर्ण व्यवस्था विरहालित होकर छिन-भिन हो गई। किसी समय स्वर्य को समाज की दृष्टि में हीन समझने वाले 'अस्पश्य' लोग आज व्यवस्था के हर क्षेत्र में ऊच पदासीन हैं। इस सबके साथ ही राजनीति का दूसरा कल्पित पक्ष भी है। यह राजनीति है जिसने जीवन के हर क्षेत्र को दृष्टिकोण कर रखा है। आज की राजनीति व्यक्तिगत स्वार्थ सर्व कुर्सी के-द्वित ही गई है। और इसके सिए "आज का राजनीतिज्ञ किसी -न- किसी तरह अपनी सत्ता और शक्ति को बनाए रखने के लिए चिन्तित रहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन जनहितों से विवास्थात, संविधान से बलात्कार और सत्ता का दूरपर्योग निस्संकोच किया जा रहा है।" 35 यथा राजा तथा प्रजा सो इन सब घटनाओं से जनता अप्रभावित कैसे रहती? एक मासिक पत्रिका व्दारा आयोजित परिचर्चा में प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मधु दण्डवते के विचार में 'आज समाज व राष्ट्र में मूर्यवीनता का जो आम माहौल दिलाई पहुँ रहा है उसका कारण मेरी समझ में शिल्प वर्क और नेताओं का आदरणीय चरित्र सर्व मूर्यवीन कर्म है। इसका सीधा प्रभाव समाज के हर तरफ पर पहुँ रहा है।' 36 वर्तमान युग में राजनीतिक कारण भी मूर्यसंक्रमण के ठोस व सशक्त माध्यम रहे हैं।

३) आर्थिक दबाव -- 'अर्थ' आज की भौतिकवादी संस्कृति के प्रमुख घटक के रूप में स्थापित हुआ है। आज मानव जीवन के समस्त कार्यकलाप मात्र अर्थ के लिए और मात्र अर्थ के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। आज का व्यक्ति समाज में आर्थिक प्रशिक्षण प्रतिष्ठा पाना चाहता है। और इसके लिए वह कुछ भी करने को उद्गत है। कारण यही कि आज समाज में व्यक्ति का स्तर उसके धनधान्य के सैर्वर्य से ज़रूर जाता है। इस प्रकार "आज अर्थ जीवनमूल्य बनकर उभरा है।"<sup>37</sup> और इसीलिए वर्तमान युग को 'अर्थ प्रधान युग' की स्त्री से अभिहित किया जास तो अतिशयोक्ति न होगी। जिधर भी दृष्टि बुझाइए उधर अर्थ प्राप्ति के लिए संघर्ष हो रहा है। समस्त समाज शोषक और शोषित - दो दलों में विभक्त है। परम्परागत कृषि आधारित भारतीय अर्थव्यवस्था का औद्योगिकरण के माध्यम से कायापलट हो रहा है। परिणामतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अस्तित्व ही छतरे में आ गया है। कुछ प्रमुख आर्थिक संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण तथा पूँजी विकेन्द्रीकरण जैसे प्रमुख दृष्टिकोण सामने आए। इस सबके परिणामस्वरूप अर्थ संबंधी सामाजिक मूल्यों में विघटन की स्थिति बनी है जिसका चित्रण आधुनिक नाटक में देखने की मिलता है।

उ) धर्म और नैतिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण - वर्तमान शती में धर्म के बारे में पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है। विज्ञान की प्रगति, औद्योगिक व्रान्ति के साथ जैसे जैसे प्रकृति के रहस्यों से परदे उठते गए वैसे-वैसे मानव की धर्म में अनास्था बढ़ती गई। आज अति बौद्धिक मानव अपने प्रश्नों, ज्ञासाओं को तर्क की कस्तूरी पर कसकर परेंगा है और अपनी मानवीय क्षमता में विश्वास करता है। आज के प्रगतिशील युग में 'ईश्वरीय सत्ता के नकार से मानवीय स्वतंत्रता, व्यक्तित्व की स्वतंत्र अस्मिता की रक्षा का प्रश्न प्रबल से प्रबलतर होता गया।'<sup>38</sup> आज का ऐसा मानव परलोक की चिन्ता छोड़कर इस लोक को सुनी बनाने हेतु समृद्धिदरील है। इसीके सदर्श में 'भोगवादी' दृष्टिकोण उभरा है जिसने मानव में प्रेम और योनस्कैक्षण्याचारिता में

बदोत्तरी हुई है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति की नैतिक मान्यताओं में विलवकारी परिवर्तन दृष्टिगत हुए हैं। आज मानव सम्मति सन्तुति शिक्षा निरोधकों के सहारे जनसंघ्या वृद्धि को रोककर, काम(सैक्ष) को प्रवृत्ति का अनुपम उपहार स्वीकार कर इसका उपयोग मात्र आनन्दमुभूति हेतु ही करना चाहती है। यौन संघर्षों के माध्यम से आनन्द प्राप्ति को ही व्यक्ति ने इसका चरम मूल्य मानतिया है। इस नई नैतिकता के क्रिया से उत्पन्न स्थितियों ने परम्परागत दम्पत्य जीवन के मध्य संबंधों पर <sup>कुछ</sup> सुलभायात किया है। इस प्रकार वर्ष और नैतिकता संबंधी घरम्परागत मूल्यों के बारे में परिवर्तित दृष्टिकोण ने भी मूल्य संक्रमण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निवाह किया है।

उ.) सामाजिक सर्व संस्थानिक कारण — मूल्य संक्रमण की प्रक्रिया में सामाजिक कारण सदैव प्रमुख भूमिका निभाते रहे हैं। आर्थिक संघर्षों के फलस्वरूप संयुक्त परिवार ट्रटे, आणविक परिवार या इकाई परिवार अस्तित्व में आए। परिवारों के विषटन के मूल में दूसरा कारण व्यक्ति स्वतंत्र भी थी। मात्र पति-पत्नी युक्त एक सीमित-सुल्लो और स्वतंत्र परिवार की कल्पना। इकाई परिवार के अस्तित्व में अने से माँ-बाप, भाई-बहिन, चाचा-चाची आदि के दिशों की महत्वा समाप्त हो गई। आज जब ये संबंध मृत हो चुके हैं तब इन संबंधों के बोझ ढोकर सामाजिक दायित्वों की औपचारिकताएँ मात्र संपन्न की जा रही हैं। इससे अलग किड्सना इसबात की है कि जिसे लक्ष्य की लैकर संयुक्त परिवार विषटित हुए और इकाई परिवार अस्तित्व में आए थे वह लक्ष्य तो पूर्ण हुआ ही नहीं अपितु सुल्लो, शक्ति और स्वतंत्रता की तलाश करते इकाई परिवार स्वयं ही ज्वलामुल्लो सदूर उग्रस्य धारण कर किस्फोटक ही चले हैं। अति स्वतंत्रता के कारण पति पत्नी के मध्य सशय के नवाँकुर प्रस्फुटित हुए हैं। सतीत्व सर्व पतिव्रतित्व की धारणाएँ मात्र कल्पना की बातें हो गई हैं।

संस्कृति के क्षेत्र में भी आज हमारी स्थिति अस्पष्ट ही है। स्वतंत्रता के प्रेरित ब्रह्मले स्थिति बाद देश में उपभोक्ता संस्कृति का अंकुरण एवं पत्तेवन हुआ जिसने मानव के आचार-विवार, जीवनादर्श एवं जीवन्तत्त्व को पूर्ण तः परिवर्तित कर दिया। उपभोक्ता संस्कृति के परिणामस्वरूप आज व्यक्ति का जीवन पूर्णिः अर्थप्रधान और आत्म केन्द्रित हो गया है। वर्तमान परिवेश में परम्परा और आधुनिकता का, आदर्श और यथार्थ का गहन संघर्ष चल रहा है। जिसमें जीवन-मूल्य धूमिल पड़ते जा रहे हैं। इस प्रकार ये सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी मूल्य संबंधिता की वर्तमान अवस्था के लिए पर्याप्त स्वयं से उत्तरदायी हैं।

उक्त चर्चित मूल्य-संबंधिता के कारणों के अतिरिक्त समाज में पनप रहा व्यक्ति स्वातंत्र्य, आधुनिक रिक्षा प्रणाली तथा ग्रामीण और शहरी संस्कृति का परस्पर संपर्क आदि कुछ अन्य कारण हैं जिनके फलस्वरूप समाज मूल्य-संबंधिता की वर्तमान स्थिति के सम्बुद्ध आ पहुंचा है। मूल्यविघटन के इन कारणों के परिप्रेक्ष्य में दिनेशकन्द का मानना है कि—  
 ‘अर्थ राजनीति ने मूल्यविघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैचारिक स्तरपर आधुनिकता की भावना ने मूल्य विघटन को सबसे अधिक प्रभावित किया है।’<sup>39</sup>

#### प्रायः स्वैरस्थापितः

#### 7) आज के स्थापित मूल्य

उक्त विश्लेषण से यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि आज हम मूल्य संबंधिता के दौर से गुजर रहे हैं। यूं तो मूल्य संबंधिता की शुस्जात स्वतंत्रता से पूर्वी हो गई थी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस प्रक्रिया में कुछ तेजी आ गई थी। डॉ. बचनसिंह के शब्दों में ‘पुराने आदर्शों, मूल्यों और आस्थाओं का विघटन यूं तो छायावादोत्तर काल के आरम्भ में ही शुरू हो गया था, पर सन् 1960 के बाद तो यह अपनी छ चरम सीमा पर

जा पहुँचा। जाधुकिता बौध को सिरीकिन का संकट मानलिया गया। ज़िन्दगी में एक अजीब तरह की अजनबियत, अलगाव और व्यर्थता का अनुभव किया जाने लगा।<sup>40</sup> आज व्यक्ति का नैतिक पतन ही चुका है परिस्थितियाँ इतनी क्रिम हो चुकी है कि "आज व्यक्ति स्वर्य को पराजित व पतित समझने को अभिशप्त हो गया है। आज उसका व्यक्तित्व उसके धरातलों पर फ़िसलकर विकलण हो गया है। अतः जीवन के स्वस्थ मूल्यों का आकार बौना हो गया है। शिष्टता, शालीनता, साधना और तपस्या ऐसे गरिमामय शब्द पर्गु हो चुके हैं तथा अर्थसंबंध रक्त-संबंधों से अधिक पवित्र हो गये हैं। देश वासियों के चेहरों पर चरित्र संकट और ग्रष्ट आचारण की श्रिङ्गारा विद्रूपता स्पष्ट रूप में दिखाने लगी है।"<sup>41</sup> यह स्थिति आज की युवा पीढ़ी में कुछ ज्यादा ही परिलक्षित हुई है जौँ जो कि आज परम्परागत मूल्यों और समाज के प्रति विद्रोह पर उतार है। युवा पीढ़ी के सामने वर्तमान समाज भूमि मुलजिम के रूप में है। उसने उसकी दी हुई व्यक्तियों, पद्धतियों, रीतिरिवाजों, सुख सुविधाओं, अवकाश के क्षणों को समृद्धि के कट्ठरे में लाकर छाड़ा कर दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज हर क्षेत्र में जीवन के मूल्य टूट रहे हैं। सामाजिक ढाँचे के अस्थि पंजार लड़ाकड़ा रहे हैं। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि हम आज मूल्यहीनता या मूल्य शृंखला की स्थिति में पहुँच गए हैं।

परम्परागत जीवन-मूल्य विघटित हुए हैं उनके बदले में आज जो नए मूल्य स्थापित हुए हैं उन्हें निम्न प्रकार सूची बध्द किया जा सकता है—

- 1- जीवन की भौतिक सुख सुविधाओं में विश्वास
- 2- पारलौकिक दृष्टि का निषेध
- 3- मानवीय सङ्कृता में विश्वास
- 4- व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा
- 5- ग्रष्ट व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश सर्व दुर्धर्ष जिजीविधा सर्व
- 6- दैव सुख ही चरम लक्ष्य।

1) जीवन की भौतिक सुधासुविधाओं में विश्वास — ज्यों ज्यों विज्ञान ने प्रगति की त्यात्या मानव जीवन के दैनिक उपयोग में आनेवले यान्त्रिक उपकरणों का नित नवीन आविष्कार होता रहा। आज आधुनिकतम उपकरणों ने मनुष्य के अधिकांश कर्ष अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिए हैं। विभिन्न प्रकार के अत्याधुनिक, आस्मद यक परिधान, प्रसाधन सामग्रियाँ, सेर-सपाटे-आवागमन के लिए अति सुखादायक ढूत से ढूत तर यानों के आविष्कार सर्व परिष्कार ने मानव जीवन के भौतिक दायरे को अति विस्तार प्रदान किया है। और आज मानव अपने जीवन में रैडियो, ट्राजिस्टर, टेलिविज़न, रैफ़िजैटर, स्कॉटर, कार और टेलीफ़ोन आदि को प्रमुख प्राथमिकता देता है क्योंकि इन वस्तुओं से उसका सामाजिक स्तर पहचाना जाता है। आज नैतिकता की होड़ में हम शुभाशुण को क्रिमृत कर बैठे हैं। इस प्रकार जो भौतिक वाद हमारे घर में घुसा तो 'उसकी चकाचैध से हम इतने छ अधै ही गए कि अच्छै-बुरे का विचार किस बिना उसके पीछे दैहूने लगे।'<sup>42</sup> आज मानव का लक्ष्य बन गया है कि छाझो-पिझो और मैज करो (ईट, हिंडे के स्पष्ट बी मेरी) अर्थात् जीवन में सभी प्रकार की सुधासुविधाओं का यथा संभव छुलकर प्रयोग करो मनुष्य सेसा ही कर रहा है। इसके लिए "आज का मानव किसी भी तरह से 'शार्टकट ऐथड' से ज्यादा से ज्यादा सासारिक सुओं से संपन्न होना चाहता है।"<sup>43</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन की भौतिक सुधा सुविधाओं में विश्वास आज का स्क प्रमुख स्थापित मूल्य बन चुका है।

2) पारलौकिक दृष्टि का निषेध — मूल्य संक्रमण की स्थिति में मानव का विश्वास पारलौकिक सत्ता पर नहीं रहा है। वह सृष्टि की नियंता अज्ञात सत्ता को नकारता तथा चुनौती देता है। आत्मा की शाश्वतता को संशय का चश्मा लगाकर देखता है। मानव संघर्ष में विज्ञान की प्रगति और औद्योगिक व्रति के परिणाम-स्फरण व्यक्ति की तर्क शक्ति जागृत हुई, उसने हर विषय को ज्यों और कैसे की क्सौटी पर कसना शुरू किया। इससे अज्ञात सत्ता के प्रति परम्परागत विश्वास शैनः शैनः अविश्वास में परिवर्तित हो गया। पश्चात्य विचारक नीत्सैने र्द्ध

ईश्वर की मृत्यु को विधिवत् घोषणा की बाद में इनके पदचिह्नों पर चलते हुस "पाल सात्र जैसे दार्शनिक साहित्यकारों ने ईश्वरीय सत्ता में विश्वास न रखकर मानवीय अस्तित्व की समर्थकता में विश्वास व्यक्त किया।"<sup>44</sup> भारतीय विचारक भी मानते हैं कि आज मानवीय पुस्तकों का युग है लेकिन उन्होंने अभीतक ईश्वरीय सत्य और न्याय को चुनौती देने का साहस नहीं दिखाया है। आज व्यक्ति की स्वयं के भाग्य का नियामक माना जाता है। लेकिन आम भारतीय किसी कोने से ईश्वर एवं भाग्यवाद की आज भी अपने हृदय के मिकी/धारणा पाले हुए हैं। इसके साथ ही यह भी सच है कि ईश्वर सर्व भाग्यश्रयी होने के बाद भी आज वह कर्म विफ़ूल नहीं हुआ है। सच तो यह है कि आज कर्म का महत्व बढ़ा है और ईश्वर का महत्व घटा है। आज की आम भारतीय युवा पीढ़ी ईश्वर में विश्वास करने या न करने की ऊहापौह वाली मानसिकता में है। इसका स्पष्टीकरण एक छोटे से दृष्टस्त से मिल जाता है कि आज कालेज के युवा छात्र पास्चात्य के पूजा की धारण करने में अपनी शान समझते हैं। किसी भी पूजा स्थल पर जाना अपनी प्रतिष्ठा और मूर्यों के प्रतिकूल समझते हैं। ऐसे छात्र-छात्राएँ परीक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व जोन्स-जैकेट पहने, क्रीम पावहुर 'लिपिस्टिक' और 'नैलपालिश' मण्डित होकर हनुमान के मन्दिर में 'प्रसाद' ग्रहण करते हुस देखो जा सकते हैं?

जैर कुल मिलाकर पास्चात्य आधुनिकता से प्रभावित युवा पीढ़ी ईश्वरीय सत्ता में अविश्वास व्यक्त करने का सहज दर्शकर धर्मसंबंधी पुरातन मूर्यों की भजित कर पारलौकिक दृष्टि के निषेध संबंधी नस मूर्य स्थापित कर रही है तथा पारलौकिक जगत की किंता छोड़कर सभी क्षेत्रों में उम्मुक्त, स्कैचावारी व्यवहार कर रही है।

3) मानवीय समता में विश्वास — "स्वतंत्रता, समता और आत्मभाव व बन्धुता हमारे सविधान के आधारभूत मूर्य हैं। फ्रासीसी व्रति के इन मूर्यों को हमने सहज भाव से अपनाया था व्यौकि

ये मूल्य आधुनिक समाज की सर्वोत्तम उपलब्धि हैं।”<sup>45</sup> संविधान में प्रतिष्ठित समता का अधिकार आज के प्रतिस्थापित जीवन-मूर्यों में भी प्रमुख स्थान पा गया है। ‘समता’ का तात्पर्य संविधान में मात्र - स्त्री-पुरुष की समानता से ही नहीं है, अपितु इसके अर्थ है ऊँच-नीच, कर्म जाति, कुल, गोत्र की सीमाओं का पूर्ण समापन तथा मानव मात्र की भावना का उन्नेबस्तर्त्वता पूर्व ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज प्रभुति धार्मिक, सामाजिक अन्दोलनों ने अपने स्तर पर समानता स्थापित करने के प्रयास किए तो स्वातंत्र्योत्तर काल में ‘वोट की राजनीति’ ने भी सामाजिक समानता के प्रवेशद्वारा छुलवाने में सहायता की है। आज के आधुनिक परिवेश में मनुष्य लिंग, जाति, कर्म, भाषा, प्रदेश आदि किसी भी आधार पर फ़िन और असमान नहीं है। समान योग्यता वाले मनुष्यों को आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में उपलब्धियाँ हासिल करने के समान अक्सर प्राप्त हैं।<sup>46</sup> आज अस्तित्व की भावना प्रमुख हो रही है। असफलता और उद्देश्यहीन स्थिति ने मानव को तोहँ दिया है। इस टूटन और जुहन की स्थिति ने ही व्यक्ति स्वातंत्र्य की अभिवृत्ति को जन्म दिया है। विवाह की स्वतंत्रता, प्रेम की स्वतंत्रता, कार्य की स्वतंत्रता और संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास की स्वतंत्रता ही व्यक्ति स्वातंत्र्य है। न स्वयं बध्द होने की आकँक्षा और न दूसरे को बध्द करने की। यही न्याय है। यही मानव समानता है। और यह आज के मूर्यों में स्थान भी प्राप्त कर चुका है।

4) व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा – आज की परिवर्तित परिस्थितियों में व्यक्ति अत्यधिक आत्म कैन्द्रित सर्व स्वार्थी हो गया है। प्रत्येक कार्य क्लाप में स्वार्थ ढेला कर प्रकृत्त होता है। इस स्वार्थ में उसके दो प्रकार के लक्ष्य निहित होते हैं प्रथम अर्थ लाभ तथा द्वितीय अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा जिसके बल पर वह सामाजिक स्थिति अर्जित कर सके। इसी व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के चलतै समाज में प्रेम, विवाह, परिवार में माँ-बाप, भाई-बहन, पिता-पुत्र, पुत्री, मित्र सर्वं पल्ली आदि सभी प्रकार के सुदृढ़ संबंधों में शिथिलता का समावेश हो गया है क्योंकि हर क्षेत्र में व्यक्ति अपने संबंधियों,

मित्रों आदि के द्वितीय की अपेक्षा स्वाधित को प्राथमिकता प्रदान करता है, स्वाभाविक भी है। पहले स्थिति इसके विपरीत थी लेकिन नवविकासित मूल्यों के अनुरूप व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ-साथ व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के मूल्य की प्रतिस्थापना को प्रमुखता मिली। इसके आँखी सभी सामाजिक संबंध गौण हो गए हैं। स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी, भाई-बहिन आदि सभी को आत्मसम्मान, आत्म प्रतिष्ठा की फिक्र है। अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिए दूसरे का अहित भी करना पड़े तो वह भी करने की प्रबल इच्छा मन में है। इस प्रकार इस हम देखते हैं कि नए जीवन-मूल्यों में व्यक्तित्व प्रतिष्ठा का एक प्रमुख स्थान है।

5) प्रष्टव्यवस्था के प्रति तीव्र आँखेश और दुर्धर्ष जिजीविषा — आज समाज में प्रष्टाचार पृष्ठियां होकर गहन चिन्ता का विषय बना है। यह हमारे जीवन का एक बहुत अधिकाप है। जीवन के सभी क्षेत्र प्रदृष्टि ही गए हैं। प्राकृतिक जलवायु के अतिकृत शहरी विशेषकर महानगरीय जीवन का प्रत्येक कदम जल, वायु, धर्वनि और न जाने जैसे कैसे प्रदृष्टियों से ग्रस्त हो गया है। मानव जीवन भी इसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रष्टव्यवस्था, प्रष्टाचार का केंद्र बन गया है। वह जहाँ कहाँ भी कार्य हैतु जाता है वहाँ उचित माध्यम से उसका कार्य संपन्न होता प्रतीत नहीं होता। चिकित्सालय, कार्यालय, पुलिस सहायता केंद्र, स्कूल-कालेज, विश्वविद्यालय, कल कार्खाने या किसी अन्य प्रकार की संस्था में जाइस वहाँ पर किसी -न- किसी स्पष्ट में प्रष्टाचार महसूस के दर्शन हो जाएगी। यहाँ तक कि प्रष्टाचार आज आम आदमी की आवश्यकता का पर्याय बन गया है तथा दिन-ब-बदन वह आदमी के जीवन में और गहरा बैठता जा रहा है। इसके चलते मानव जीवन बदसै बदतर होता जा रहा है। एक और यह चिन्तनीय हालत और दूसरी और बढ़ती बेरोजगारी के चलते मानव मन इस प्रष्टाचार के प्रति विद्रोह करने पर उत्तार्ह हो गया है। आज आए दिन प्रष्टाचार, अन्याय के विरोध में हृताल, बन्द के आयोजन, प्रेष्टाचार उन्मूलन अभियान चलने की बातें सुनने व पढ़ने को मिल जाती हैं। इस प्रकार हम

देखते हैं कि आज मानवमन में तीव्र आक्रोश भड़क उठा है। और वह इस दृष्टिक्षण को ज्ञाह केंकने के लिए बैंचन है।

एक और आकृष्ट फैला हुआ प्रष्टाचार दूसरी और बढ़ती हुई मुद्रास्फीति के कारण महगाईक्षण दूखार होते हुस जीवन में भी मानव संघर्ष की उद्यत है। एक और विभिन्न बुराइयों के विरोध में, भलाइयों के पक्ष में आस दिन जुलूस आयोजित कर और करा कर अपनी आवाज बुलंद करना, विरोधी मानवीय शक्तियों के प्रति संघर्ष में गुथा हुआ है तो दूसरी और छातरनाक से छातरनाक शारीरिक और मानसिक व्याधियों के निदान हेतु चिकित्सालयों में संघर्ष कर रहा है। जैविकीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समय असमय विभिन्न स्थानों पर पक्षिबध्द छहे रहकर रोजमा घटों दर घटों प्रतीक्षा करना आज के मानव की सशक्ति जिजीविषा का ही परिचायक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज समाज में प्रष्ट व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश ऊपर रहा है और साथ ही मानव में अपने जीवन की सुरक्षा, जीवन-इच्छा भावना प्रबल से प्रबलतर होती जा रही है। विषम से विषमतर परिस्थिति में आज मनुष्य अपने जैविकीय अस्तित्व की रक्षा में संलग्न है। कुछ इस सीमातक कि आज यह जीवन-मूल्य के रूप में स्थापित हो चला है।

6) दैहसुख ही चरम लक्ष्य — कुछ काल पूर्व तक स्त्री पुरुष के स्वस्थ शारीरिक संबंधों की स्थापना पति-पत्नी के रूप में समाज की स्वीकृति मिलने पर ही होती थी तथा नारीत्व की चरम परिणति मातृत्व में मानी जानी थी। लैकिन अब फ़ॉयल के काम विषयक चिन्तन के आलोक में इन मान्यताओं की उपहास्पद ठहराया जाने लगा है। नारीत्व का चरमोत्तर्मातृत्व में स्वीकारनेवाली आदर्श भारतीय नारी भी अपने आप को फ़ॉयलवादी दर्शन के प्रभाव से अपने को मुक्त न रहा सकी। आज की नारी अपने स्वास्थ्य और सौम्दर्य की रक्षा की दृढ़ाई देकर मातृत्व से बचना चाहती है। आज का प्रगतिशील विज्ञान नाना प्रकार के गर्भनिरोधक विकसित

कर नारी की इस लक्ष्य में सहायता कर रहा है।

प्रायःठीय चिन्तन के परिणामस्वरूप आज की नैतिकता संबंधी धारणाओं में भी व्यापक परिवर्तन आया है। यौनस्वतंत्रता की वकालत की जाने लगी है। आज के अत्यधुनिक सर्व अर्थप्रधान युग में प्रत्येक वस्तु एवं कर्म को उसकी उपयोगिता वादी तुष्टिगुणीय दृष्टि से देखा जाता है। इसी दृष्टि से आज स्त्री-पुरुषों ने भी अपने आप की कस्तु के स्थ में स्थापित किया है तथा "व्यक्ति की इच्छा या वासनाओं की तुष्टि को प्रकृत्या और एक अधिकार मानने की प्रवृत्ति को बदावा मिलने से शारीरिक पवित्रता को आवश्यक नहीं माना जा रहा है। काह्य और अन्य क्लाऊं में इसीलिए यौनस्कङ्कन्दता को जैविक आवश्यकता और देह धर्म के रूप में अधिकाधिक प्रस्तुत किया जा रहा है, हिप्पी संस्कृति, न्यु-वैव, कामौत्तेजक पत्र-पत्रिकाओं, ब्ल्यू-फिल्म्स, उत्तेजक सिनेचित्र, स्त्री-पुरुष घों के घर से बाहर सान्निध्य के क्लब-बार, फिस्को में, सभाओं जादि के रूप में मिलन, स्थल, डेटिंग जादि की प्रवृत्ति इस यौन स्कङ्कन्दता को और अधिक बढ़ावा दे रही है। समाज का धनाद्य या नवधनाद्य कर्म अपने पैसे के बल पर इन सुविधाओं का अधिकाधिक भोग करता हुआ इस नई नैतिकता का सर्वाधिक पक्षधार है।"<sup>47</sup>

...

### उपसंहार :

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के युग में परम्परागत सत्यता, न्यायप्रियता, ईमानदारी जैसी नैतिक धारणाओं पूर्णतः लुप्त होती जा रही है। आज पारिवारिक व सामाजिक मूल्य समापन की और उन्मुख हैं। आज 'न पत्नी के लिए पति परमेश्वर रहा है और न पति के लिए पत्नी ही अधर्दीगिनी के रूप में स्वीकृत रही है। यौन किञ्चित् का किफोट ही रहा है और उसके चलते फुलामीशते बुरी तरह हिल गए हैं।"<sup>48</sup>

नर मूल्य पुराने मूल्यों का स्थान ले रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आज का युग मूल्यों की दृष्टि से अराजकता का युग है। स्थिति की विद्रूपता अवर्णनीय हो गयी है क्योंकि 'कल तक अप्रमाणित कर्द्द ख जानेवाले दृगुण आज के सर्वमान्य मूल्य बन चुके हैं। सत्य का आज के युग में उपहास किया जाता है।..... सत्य का स्थान छूठ नै, सत्य का पाञ्चांड नै, कर्त्त्य का चाटुकारिता नै, न्याय का पक्षपात नै बही सरलता से ले लिया है। और कहने की आवश्यकता नहीं है कि यही आज के सर्वमान्य मूल्य हैं।"<sup>49</sup> इसमें कुछ सदैव नहीं कि कुछ समय पूर्व "हङ्गने जिन मूल्यों के लिए और जिन कल्पनाओं के लिए अपने को उत्सर्ग किया था वे कहीं नितन्त छूठी और छोटी पढ़ गई हैं।"<sup>50</sup>

आधुनिक काल के पूर्व से प्रारम्भ हो कर आधुनिक काल वे विभिन्न पहावों और उत्तार चुदावों को देखती हुई हमारी जीवन-मूल्य यात्रा अपने वर्तमान रूप में कैसे आई, इसके पीछे कौन-कौन से कारण रहे? अत विवेचन इसका एक सक्षिप्त और सपाट आलेख है। विगत में मूल्य बदलते रहे हैं, आज बदल रहे हैं, भविष्य में बदलते रहेंगे क्योंकि मूल्य परिवर्तन एक सेतिहासिक प्रक्रिया है। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप ही सामाजिक संदर्भ तथा संबंध भी परिवर्तित होते रहते हैं। और किसी समय तक अत्यन्त सार्थक लगने वाले जीवन-मूल्य धीरेधीरे अर्थ हीन लगने लगते हैं।"<sup>51</sup> साहित्य समकालीन घटनाक्रम को केवारिक स्तर पर स्वयं में समाहित करता चलता है। अतः आज का साहित्य भी वर्तमान मूल्यों से निरपेक्ष रह सकता। आजके आधिकारित मूल्यों को आज के साहित्य में स्थान मिल रहा है। नाट्य विद्वान् इसकी अपवाद नहीं कही जा सकती। स्वतंत्रता के बाद, विशेषकर साठीलर भारतीय समाज में जो व्यापक मूल्य संकलन की स्थिति उत्पन्न हुई है उसने भारतीय साहित्यकार के अन्तर्मन को बहुत गहरे तक ऊंचाई दिया है। साहित्यकार ने अपनी प्रतिक्रिया को, अपनी अनुभूति को साहित्य में किस प्रकार अश्विन्नत किया है इसकी जौच हम नाट्यविद्वान् विशेषकर साठीलरी कुछ चुने हुए नाट्यकारों की नाट्यकृतियों के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास करेंगे।

: संदर्भ संकेत :

- 1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुल्क पृ. ।
- 2- हिन्दी साहित्य का अलोचनात्मक इतिहास- पृ. 32 - द्वितीय १९७५।
- 3- आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य - डॉ. हुकुम चन्द राजपाल, पृ 94
- 4- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुल्क पृ ।
- 5- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपतिचन्द्र गुप्त पृ 603
- 6- हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं.डॉ.नगेन्द्र पृ 6।
- 7- - वही -- पृ. 440
- 8- बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक - डॉ.ओम प्रकाश सारस्वत पृ 46
- 9- सौने की चिह्नियाँ और लुटेरे अग्रेज - सुरेन्द्र नाथ गुप्त पृ ॥
- 10- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डॉ.नगेन्द्र पृ 44।
- 11- - वही -- पृ 440
- 12- - वही -- पृ 449
- 13- उधृत : आधुनिक हिन्दी कहानी में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति - डॉ.प्रेमचन्द्र सिंह पृ 24
- 14- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डॉ.नगेन्द्र पृ 450
- 15- आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य - डॉ. हुकुमचन्द राजपाल पृ 110
- 16- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन - डॉ. के.के.मिश्र पृ 77
- 17- आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य- डॉ. हुकुम चन्द राजपाल पृ 112
- 18- भारत में सामाजिक परिवर्तन - मुकर्जी एवं दुबे पृ 84
- 19- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन - डॉ.के.के.मिश्र पृ 82
- 20- साठोत्तरी हिन्दी कविता की कस्तु चेतना - डॉ. बादाम सिंह रावत पृ 25-26
- 21- - वही -- पृ. 37
- 22- - वही -- पृ 37
- 23- - वही - पृ. 30
- 24- - वही - पृ.32
- 25- कल्पना, मर्मा 67 (हिन्दी साहित्य के पिछले बीस वर्ष - लक्ष्मीकान्त वर्मा पृ 39)

- 26- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्णा अग्निहोत्री पृ 22
- 27- मधुमती, सितम्बर 74, (विकासवाद और आज का साहित्य - अरकिंद वशिष्ठ) पृ 34
- 28- — वही — — वही —
- 29- मधुमती - जनवरी/फरवरी 70 (आत्मविस्मृति का व्यापोह मूलयहीनता का मूल्यशाति भारव्वाज 'राकेश') पृ 91-92
- 30- समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ - डॉ पुष्पा पाल सिंह पृ 28
- 31- — वही — पृ 29
- 32- साठोत्तरी हिन्दी कविता की कस्तु चेतना - डॉ. बादामसिंह रावत पृ. 45
- 33- हिन्दी नाटक मूल्य संक्षण गिरिराज शर्मा 'गुजिन' पृ 30
- 34- कल्पना - मई 67, ~~प्रश्नात्मक~~~~प्रश्नात्मक~~~~प्रश्नात्मक~~~~प्रश्नात्मक~~ (हिन्दी साहित्य के पिछले बीस वर्ष लक्ष्मी कान्त वर्मा) पृ 17
- 35- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : समस्या और समाधान - डॉ. दिनेशचन्द्र वर्मा पृ 96
- 36- कादम्बिनी - दिसम्बर, 88 (आदर्श हीन चरित्र ही मूल कारण - मधु दष्टवते) पृ 29
- 37- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : समस्या और समाधान - डॉ. दिनेशचन्द्र वर्मा पृ 17
- 38- समकालीन हिन्दी कहानी : युगबोध का संदर्भ - डॉ. पुष्पपाल सिंह पृ 36
- 39- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : समस्या और समाधान - डॉ. दिनेशचन्द्र वर्मा पृ 124
- 40- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डॉ. नगैन्द्र पृ 730
- 41- सप्तसिध्धि, दिसम्बर 75 (विद्वौह, क्रान्ति अलगाव मूल्यबोध -राम देव आचार्य पृ 46
- 42- कादम्बिनी - दिसम्बर 88 पृ 28
- 43- — वही — पृ 33
- 44- समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ - डॉ. पुष्पपालसिंह पृ 36
- 45- नवभारत टाइम्स - 18 फरवरी 1989 पृ 6
- 46- वीणा - अक्टूबर 88 (हिन्दी कहानी - मूल्यों के नए प्रश्नचिह्न - डॉ. शुक्ल) पृ 29
- 47- समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ - डॉ. पुष्पपाल सिंह पृ 43
- 48- साठोत्तरी हिन्दी कविता की कस्तु चेतना - डॉ. बादामसिंह रावत पृ 92
- 49- — वही — पृ 89-90
- 50- कल्पना, मई 67, (हिन्दी साहित्य के पिछले बीस वर्ष लक्ष्मी कान्त वर्मा(पृ 14
- 51- वीणा, अक्टूबर 1988 'हिन्दी कहानी मूल्यों के नए प्रश्नचिह्न डॉ. उमा शुक्ल) पृ 27